वर्ष : 12 अंक : 8 अगस्त, 2014 ₹ 10

सामाजिक न्याय संदेश

समतावादी विचार का संवाहक

मानसिक स्वतंत्रता ही वास्तविक स्वतंत्रता है

भारत का संविधान

भारत के लोग, भारत को एक **संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न, समाजवादी, पंथ-निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य** बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को :

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय,**
विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म
और उपासना की **स्वतंत्रता,**
प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**
प्राप्त कराने के लिए,
तथा उन **सब में** व्यक्ति की गरिमा और
राष्ट्र की एकता और अखंडता
सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवम्बर 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हजार छह विक्रमी) को **एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

सामाजिक न्याय संदेश

समतावादी विचार का संवाहक

वर्ष : 12 ★ अंक : 08 ★अगस्त 2014 ★ कुल पृष्ठ : 60

सम्पादक
सुधीर हिलसायन

सम्पादक मंडल
चन्द्रवली
प्रो. शैलेन्द्रकुमार शर्मा
डॉ. प्रभु चौधरी

सम्पादकीय कार्यालय
सामाजिक न्याय संदेश
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान
15 **जनपथ, नई दिल्ली**-110001
सम्पादकीय सम्पर्क **011-23320588**
सब्सक्रिप्शन सम्पर्क 011-**23357625**
मोबाईल : 07503210124
फैक्स : 011-23320582
ई.मेल : hilsayans@gmail.com
editorsnsp@gmail.com

वेबसाईट: www.ambedkarfoundation.nic.in
(सामाजिक न्याय संदेश उपर्युक्त वेबसाईट पर उपलब्ध है)

व्यापार व्यवस्थापक
जगदीश प्रसाद

प्रकाशक व मुद्रक **जी.के. द्विवेदी**, निदेशक (डॉ.अ.प्र.) द्वारा डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान (सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार) के लिए इंडिया ऑफसेट प्रेस, ए-1, मायापुरी इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-I, नई दिल्ली 110064 से मुद्रित तथा 15 जनपथ, नई दिल्ली-110001 से प्रकाशित व **सुधीर हिलसायन,** सम्पादक (डॉ.अ.प्र.) द्वारा सम्पादित।

सामाजिक न्याय संदेश में प्रकाशित लेखों/रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। प्रकाशित लेखों /रचनाओं में दिए गए तथ्य संबंधी विवादों का पूर्ण दायित्व लेखकों /रचनाकारों का है। यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो। पत्रिका में प्रकाशित विज्ञापनों की विषय-वस्तु के लिए भी सामाजिक न्याय संदेश उत्तरदायी नहीं है। समस्त कानूनी मामलों का निपटारा केवल दिल्ली/नई दिल्ली के क्षेत्र एवं न्यायालयों के अधीन होगा।

RNI No. : DELHIN/2002/9036

इस अंक में

❖ सम्पादकीय/मानसिक स्वतंत्रता ही वास्तविक स्वतंत्रता है	सुधीर हिलसायन	3
❖ गोलमेज सम्मेलन में डॉ. अम्बेडकर		4–9
❖ 15 अगस्त स्वतंत्रता दिवस समारोह लालकिले की प्राचीर से प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी का संबोधन		10–18
❖ डॉ॰ अम्बेडकर की परिकल्पना का स्वतंत्र भारत	डॉ॰ आर.एम.एस. विजयी	19–20
❖ संस्कृति एवं समाज	प्रो. श्रीप्रकाश सिंह	21–24
❖ लोकतंत्र और शिक्षा	डॉ. सोना दीक्षित	28–37
❖ उपन्यास अंश/अछूत	मुल्क राज आनन्द	38–46
❖ पुस्तक अंश/डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर–जीवन चरित	धनंजय कीर	47–57
❖ कविताएं/कुछ काम मिशन का कर लें/मोहब्बत मिशन से	स्नेहा भारती	58

ग्राहक सदस्यता शुल्क : वार्षिक ₹ 100, द्विवार्षिक : ₹ 180, त्रैवार्षिक : ₹ 250
डिमांड ड्राफ्ट/मनीऑर्डर ***डॉ. अम्बेडकर फाउन्डेशन,*** *15 जनपथ, नई दिल्ली-110001 के नाम भेजें। चेक स्वीकार नहीं किए जाएंगे।*

सम्पादक के नाम पत्र

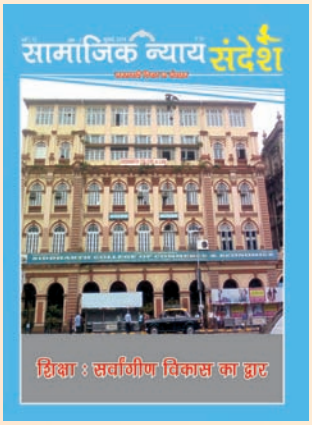

बाबा साहेब के विचार अन्य पत्रिकाओं में इतने विस्तार से नहीं

सम्पादक महोदय,

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के विचारों को जन-जन तक पहुँचाने के लिए 'डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान' द्वारा इस पत्रिका का प्रकाशन एक सराहनीय कार्य है। हमें अन्य जानकारियां तो दूसरे समाचार पत्र-पत्रिकाओं से मिल जाती हैं लेकिन बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के विचार इस तरह से विस्तार रूप में नहीं मिलते जिस तरह से 'सामाजिक न्याय संदेश' पत्रिका से मिलते हैं। इसलिए इस पत्रिका के प्रकाशन का काम कभी मन्द नहीं होना चाहिए, ऐसी हमारी इच्छा है। इस पत्रिका की सदस्यता राशि भी आपने कम ही रखी है, जबकि अन्य आम पत्रिकाएं बाजार में काफी महंगी हैं, जिन्हें आम आदमी खरीदने से कतराता है। इसलिए पत्रिका के माध्यम से मैं गरीब व कमजोर भाई-बहनों, जो पत्रिका पढ़ने में रूचि रखते हैं वे अन्य पत्रिकाओं के बजाय 'सामाजिक न्याय संदेश' पत्रिका को पहले खरीदने व सदस्य बनने का प्रयास करें। बाबासाहेब में भी पढ़ने-लिखने की इतनी रूचि थी कि अपने दूसरे फिजूल खर्चे कम कर पुस्तकों पर अधिक खर्च करते थे, और अपना ज्ञान बढ़ाते थे। पढ़ाई-लिखाई के बल पर ही उन्होंने अपना ज्ञान इतना बढ़ाया कि वे देश के सबसे अधिक डिग्री धारक उस समय बने, जब इस देश की समाज व्यवस्था ने हमारी शिक्षा के द्वार बन्द किए हुए थे। पढ़ाई-लिखाई का ही नतीजा था कि जब बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर को भारत का संविधान तैयार करने का मौका मिला तो उन्होंने हमें दुनिया का सबसे बेहतर संविधान दिया, जिस पर आज हम गर्व करते हैं।

रामकुमार,
दौसा (राजस्थान)

अच्छे संदेश के लिए पत्रिका की अच्छी छवि बरकरार रखें

सम्पादक महोदय,

आपके द्वारा 'सामाजिक न्याय संदेश' पत्रिका में महापुरूषों के संदेशों के साथ-साथ विभिन्न लेखकों के लेखों को भी प्रकाशित किया है, जो काफी सराहनीय हैं। प्रतिभाशाली लेखकों के लेखों से पत्रिका की एक अच्छी छवि तो बनती ही है साथ में यह भी संदेश जाता है कि पत्रिका से बुद्धिजीवी वर्ग जुड़ा है जो दबे-कुचले और पिछड़े वर्ग के उत्थान के लिए तत्पर है। हम आशा करते हैं कि आप पत्रिका के इस स्तर को बनाए रखने के साथ-साथ और ऊंचा करेंगे। पत्रिका को यह छवि अन्य आम पत्रिकाओं से अलग करती है क्योंकि अन्य पत्रिकाओं के मालिक बाजार में बिक्री की लालसा में अच्छी ज्ञान वर्धक सामग्री की बजाए फूहड़ता पर ज्यादा जोर देते नजर आते हैं। इससे जाहिर होता है कि उनका समाज के प्रति कोई उत्तरदायित्व न होकर गर्त में धकेलने का काम करती हैं। जबकि पढ़े-लिखे वर्ग की जिम्मेदारी है कि वह अपनी लेखनी का सदुपयोग कर समाज का मार्ग-दर्शन करें। हम उम्मीद करते हैं कि आपकी पत्रिका समाज में सही संदेश का आग़ाज करती रहेगी। धन्यवाद।

रमेश गौतम
फतेहपुर (उ.प्र.)

पत्रिका महापुरूषों के संदेश पहुँचाने का सही जरिया

सम्पादक महोदय,

प्रतिष्ठान द्वारा प्रकाशित 'सामाजिक न्याय संदेश' पत्रिका का जून 2014 का अंक पढ़ा, जिसे आपने कबीर विशेषांक के रूप में निकाला है। इस अंक में प्रकाशित लेखकों द्वारा लिखे गए लेख कबीर साहेब के संदेशों को उनकी वाणियों के भावार्थ को समझाते हुए लिखे हैं, जो काफी प्रशंसनीय हैं। इससे पाठकगण समय-समय पर महापुरूषों के जीवन-दर्शन व संदेशों से अवगत तो होंगे ही साथ में उनकी जयन्ती व उनसे सम्बन्धित तिथियों पर उन्हें स्मरण करने की भावना भी समाज में जगेगी, क्योंकि यह सही बात है कि समाज के पीड़ित होने का कारण ही उनकी अज्ञानता है। अज्ञानता का अंधेरा दूर होने पर हर कोई अपने मुक्ति के रास्ते पर चल पड़ेगा। सम्पादक जी इस काम में आप एक बड़ी भूमिका निभा रहे हैं जिसके लिए आपको धन्यवाद।

संजीव कुमार,
नवादा (बिहार)

मानसिक स्वतंत्रता ही वास्तविक स्वतंत्रता है

स्वतंत्रता को मोटे तौर पर दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है। पहला नागरिक या सामाजिक स्वतंत्रता और दूसरा राजनीतिक स्वतंत्रता। नागरिक या सामाजिक स्वतंत्रता के अन्तर्गत विचरण की स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता एवं कार्य करने की स्वतंत्रता आदि आती है। उपरोक्त स्वतंत्रता निस्संदेह मौलिक स्वतंत्रता है, विचारों की स्वतंत्रता, कई कारणों से महत्त्वपूर्ण है, यह बौद्धिक, नैतिक, राजनीतिक तथा सामाजिक सभी प्रकार की उन्नति के लिए आवश्यक है, जहां यह स्वतंत्रता नहीं होती, वहीं पर यथास्थिति रूढ़ हो जाती है, कार्य की स्वतंत्रता महज औपचारिक न हो, बल्कि यह वास्तविक अर्थ में होनी चाहिए।

स्वतंत्रता का तात्पर्य विशिष्ट कार्य को करने की प्रभावी शक्ति से है, जहां इस स्वतंत्रता का लाभ उठाने के साधन मौजूद नहीं हैं, वहां स्वतंत्रता नहीं है, बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर मानते थे कि **'कार्य करने की वास्तविक स्वतंत्रता केवल वहीं पर होती है जहां शोषण का समूल नाश कर दिया गया हो, जहां एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग पर अत्याचार नहीं किए जाते हो, जहां बेरोजगारी नहीं है, जहां गरीबी नहीं है, जहां किसी व्यक्ति को अपने धंधे के हाथ से निकल जाने का भय नहीं है, अपने कार्यों के परिणामस्वरूप जहां व्यक्ति अपने धंधे की हानि, घर की हानि तथा रोजी-रोटी की हानि के भय से मुक्त है।'**

राजनीतिक स्वतंत्रता का तात्पर्य व्यक्ति की उस स्वतंत्रता से है जिसके अनुसार वह कानून बनाने तथा सरकारों को बनाने अथवा बदलने में भागीदार होता है, सरकारों का गठन इसलिए किया जाता है, ताकि वे व्यक्ति के लिए कुछ अनन्य अधिकार, जैसे समता, स्वतंत्रता तथा बंधुता के साधन सुरक्षित ढंग से उपलब्ध कराएं, अतः सरकार वहां से ही अपने अधिकार प्राप्त करे, जिनके अधिकारों को सुरक्षित रखने का दायित्व उसे सौंपा गया है, इसका तात्पर्य यह है कि सरकार को अपना अस्तित्व, अपनी शक्ति, अपना अधिकार उन लोगों से ही प्राप्त करना चाहिए, जिन पर वह शासन करती है।

वास्तव में राजनीतिक स्वतंत्रता 'मानव-व्यक्तित्व' तथा 'समानता' के सिद्धांत से उत्पन्न होती है, क्योंकि इसका अर्थ यह होता है कि सभी प्रकार का राजनीतिक अधिकार जनता से प्राप्त होता है तथा जनता दूसरों के द्वारा नहीं, बल्कि अपने द्वारा निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए, लोगों के सार्वजनिक तथा निजी जीवन को नियंत्रित करने तथा दिशा-निर्देश देने में समर्थ है।

स्वतंत्र समाज-व्यवस्था के उपर्युक्त दोनों सिद्धांत एक-दूसरे से जुड़े हैं, इन्हें अलग नहीं किया जा सकता, एक बार यदि पहले को स्वीकार कर लिया जाए, तो दूसरा सिद्धांत स्वतः ही आ जाता है। यदि एक बार मानव-व्यक्तित्व की पवित्रता को स्वीकार कर लिया जाए तो व्यक्तित्व के विकास के लिए समुचित वातावरण के रूप में स्वतंत्रता, समानता तथा भाईचारे की आवश्यकता को भी स्वीकार किया जाना चाहिए।

स्वतंत्रता को 'वास्तविक' बनाने के लिए 'सामाजिक समानता' एवं 'आर्थिक सुरक्षा' अवश्यंभावी है। आम नागरिकों के सामाजिक अधिकारों में जितनी अधिक समानता होगी, अपनी स्वतंत्रता का वे उतना ही अधिक उपयोग कर सकेंगे।

अगर सही मायने में स्वतंत्रता को अपना अर्थ देना है तो यह आवश्यक है कि समाज में 'समता के भाव' व 'दूसरों के अधिकारों के प्रति सम्मान की भावना' को बढ़ावा दिया जाए अन्यथा स्वतंत्रता अपना अर्थ खोने लगेगी।

शिक्षा की सुलभता जिसके उपरांत मानसिक स्वतंत्रता की गुंजाइश बनती है, भी वास्तविक स्वतंत्रता सुनिश्चित करने की एक खास कड़ी है। इस दुनियां में मनुष्य हमेशा परेशानियों से घिरा रहता है और उसके लिए अपनी स्वतंत्रता खोए बगैर अपना रास्ता तय करना जरूरी है। जब तक मन की स्वतंत्रता को उपयोग करने की शिक्षा न दी जाएगी तब तक स्वतंत्रता का कोई मतलब नहीं है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए शिक्षा प्राप्त करने का मनुष्य का अधिकार उसकी स्वतंत्रता के लिए मूलभूत अधिकार बन जाता है। एक अज्ञानी मनुष्य स्वतंत्र हो सकता है परन्तु वह अपनी स्वतंत्रता का सही उपयोग तब तक नहीं कर सकता, जब तक कि उनके ज्ञान चक्षु न खुल जाएं ताकि वह अपनी बेहतरी के प्रति आश्वस्त हो सके। दरअसल मानसिक स्वतंत्रता ही वास्तविक स्वतंत्रता है। स्वतंत्रता दिवस पर पाठकों, लेखकों व सभी देशवासियों को हार्दिक शुभकामनाएं!

सुधीर हिलसायन

(सुधीर हिलसायन)

पुस्तक अंश: बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खंड-5

गोलमेज सम्मेलन में डॉ. अम्बेडकर

संघीय संरचना समिति

पैंतीसवीं बैठक-
15 अक्तूबर 1931
मद संख्या 4
(संघ और उसकी इकाइयों के बीच वित्तीय संसाधनों का विभाजन)
संघीय वित्त उप-समिति की रिपोर्ट पर बहस

डॉ. अम्बेडकर* : अध्यक्ष महोदय! कल मैंने आपका ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट किया था कि वित्तीय समिति ने संघ सरकार के लिए जो वित्तीय प्रणाली प्रस्तावित की है, वह मुझे अपर्याप्त और अविकासशील लगती है। यह उस भार के अनुरूप नहीं है, जो किसी आपात स्थिति के उत्पन्न होने पर संघ की सरकार पर पड़ सकता है और इसलिए दोनों सरकारों के लिए आयकर को आय का एक समान स्रोत बनाकर उप-समिति द्वारा राजस्व के प्रस्तावित आवंटन में परिवर्तन किया जाना चाहिए। मैंने यह भी कहा था कि संसाधनों का आवंटन करते समय दो संकल्पनाओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए। पहली संकल्पना यह है कि वित्तीय व्यवस्था, चाहे वह संघीय हो चाहे प्रांतीय, स्वायत्त और आत्मनिर्भर होनी चाहिए। दूसरा यह है कि यह ऐसी नहीं होनी चाहिए, जिससे कार्यकारिणी में उत्तरदायित्व की वह भावना कम हो जाए, जो उसकी विधान-मंडल के प्रति होनी चाहिए। इससे स्पष्ट है कि जो आर्थिक सहायता या अंशदान स्वायत्तपूर्ण और और आत्मनिर्भर वित्त व्यवस्था के अनुरूप नहीं है, उससे कार्यकारिणी में विधान-मंडल के प्रति उत्तरदायित्व की भावना को क्षति पहुंचेगी और उससे विधान-मंडल कार्यकारिणी के प्रति उदासीन हो जाएगा। पूर्ति को अस्वीकृत करने की शक्ति और बाहर से प्राप्त पूर्ति के विनियोजन को अस्वीकृत करने की शक्ति का होना कार्यकारिणी को नियंत्रित करने और उसे विधान-मंडल की इच्छा के अनुरूव ढ़ालने के लिए समान रूप से प्रभावी नहीं है। इस दृष्टिकोण से राजस्व के साधनों को विभाजित करने की समस्या अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो जाती है। आप उन्हें इस प्रकार विभाजित कर सकते हैं कि इससे संघ और प्रांत, दोनों की वित्त व्यवस्था स्वायत्तपूर्ण और आत्मनिर्भर बन जाएं या आप इसे इस प्रकार विभाजित कर सकते हैं कि इसके विभाजन के बाद जो वित्त व्यवस्था बने, वह आर्थिक सहायता और अंशदानों के द्वारा समायोजन किए बगैर स्वायत्तपूर्ण न हो और आत्मनिर्भर न बन सके।

आयकर पर विचार करने पर उसे राजस्व के एक संयुक्त साधन बनाए जाने का सुझाव देते समय मेरे ध्यान में यही बातें रही थीं। आयकर को राजस्व का संयुक्त साधन बनाने के दो उपाय हैं। पहला, जिसे आप साधन का पृथक्करण और आय का विभाजन कह सकते हैं और दूसरा, साधनों का आवंटन या बंटवारा और आय का विभाजन। पहले उपाय में दर निश्चित करने का अधिकार इन दोनों पक्ष में से केवल एक पक्ष का होगा और यह काम स्वभावत: संघीय सरकार का ही होगा। प्रांतों का काम और कुछ नहीं केवल कर से होने वाली आय में से सिर्फ अपना अंश प्राप्त करने का अधिकार होगा। दूसरे उपाय के अधीन दोनों को अपने-अपने यहां आयकर की दरों को निश्चित करने का अधिकार होगा। एक प्रांत आयकर की अपनी दरें निश्चित करेगा, जो उसी प्रांत में लागू होंगी। संघ

आयकर की अपनी दर निश्चित करेगा, जो संघ की सभी इकाइयों में लागू होंगी। इस बारे में कि आयकर निश्चित करने और उसे वसूल करने के लिए संघीय सरकार का प्रशासन बना रहे, मेरा विचार है कि राजस्व के आवंटन के लिए दूसरा उपाय अपनाया जाना चाहिए। यह उस प्रणाली से बहुत ज्यादा भिन्न नहीं होगी, जो फ्रांस, बेल्जियम और अन्य यूरोपीय देशों में प्रचलित है। इस योजना के तहत आयकर की दो दरें होंगी : (1) संघीय दर, जो संघीय सरकार द्वारा उसकी अपनी आवश्यकता के अनुसार निश्चित की जाएगी, और (2) प्रांतीय दर, जिसे प्रांत समय-समय पर अपनी-अपनी वित्तीय आवश्यकता के अनुसार निश्चित किया करेंगे। कुल मिलाकर यह कर, जैसा कि इस समय होता है, संघीय सरकार द्वारा प्रशासित और संग्रहीत किया जाया करेगा।

इस योजना के लाभ स्पष्ट हैं। पहला, इसके फलस्वरूप अनुदान और अंशदान की पद्धति खत्म हो जाएगी और प्रत्येक इकाई की वित्तीय व्यवस्था स्वायत्तपूर्ण और आत्मनिर्भर बन जाएगी। दूसरा, इससे कार्यकारिणी में उत्तरदायित्व की भावना बनी रहेगी, क्योंकि अपनी पूर्ति को सुरक्षित रखने के लिए उसे विधान-मंडल पर उसके द्वारा आयकर की दर निश्चित करने पर निर्भर रहना जरूरी हो जाएगा। तीसरा- और यह बहुत महत्त्वपूर्ण है, मेरा ख्याल है कि किसी एक प्रांत पर दूसरे प्रांत के लाभ के लिए कर नहीं लगाया जाएगा। साधन को पृथक्कृत करने की दूसरी प्रणाली के अधीन सभी प्रांतों के लिए एक ही संघीय दर होगी और आय का विभाजन होगा। इससे जो रकम किसी एक प्रांत में संग्रहीत होगी, यह जरूरी नहीं कि वह विभाजन में उसके अंश के बराबर ही हो। कुछ प्रांत ज्यादा दे रहे होंगे और कम प्राप्त कर रहे होंगे। ऐसे प्रांतों के लिए यह योजना और कुछ नहीं सिर्फ एक छलना होगी, जिसके तहत किसी एक प्रांत से दूसरे प्रांत के लाभ के लिए ज्यादा कर लिया जा रहा होगा।

भारत भी उतना ही विशाल है, जितना यूरोप। यूरोप में आयकर की दरों में एक समानता नहीं है, लेकिन तब भी वहां अन्य देशों की तरह बड़ी अच्छी तरह व्यापार और उद्योग चल रहा है। तब भारत में ऐसा क्यों न हो? इसके अलावा, जो लोग आयकर की एक समान दर होने पर जोर दे रहे हैं, वह कृपया यह बताएं कि भारत में भूमिकर के बारे में, जैसी कि इस समय स्थिति है, वह किस प्रकार अपने को चुप किए रहते हैं? इस बारे में कोई एक समानता नहीं है। बल्कि भूमिकर की ये दरें इतनी ऊंची-नीची हैं कि उन्हें देखकर बेहद हैरानी होती है। यह दरें किन्ही दो प्रांतों में एक जैसी नहीं हैं और न किन्हीं दो प्रांतों में इन दरों की कर प्रणाली में कोई समानता है।

मैं जिस प्रणाली का प्रस्ताव कर रहा हूं, उस पर वे लोग आपत्ति कर सकते हैं, जो व्यापार और उद्योग के लिए आयकर की एक समान दर के होने पर जोर देते हैं। दरों का एक समान होना निश्चय ही एक स्पृहणीय बात है और इसके महत्व के बारे में बढ़ा-चढ़ाकर कहना एक आसान बात है। भारत भी उतना ही विशाल है, जितना यूरोप। यूरोप में आयकर की दरों में एक समानता नहीं है, लेकिन तब भी वहां अन्य देशों की तरह बड़ी अच्छी तरह व्यापार और उद्योग चल रहा है। तब भारत में ऐसा क्यों न हो? इसके अलावा, जो लोग आयकर की एक समान दर होने पर जोर दे रहे हैं, वह कृपया यह बताएं कि भारत में भूमिकर के बारे में, जैसी कि इस समय स्थिति है, वह किस प्रकार अपने को चुप किए रहते हैं? इस बारे में कोई एक समानता नहीं है। बल्कि भूमिकर की ये दरें इतनी ऊंची-नीची हैं कि उन्हें देखकर बेहद हैरानी होती है। यह दरें किन्ही दो प्रांतों में एक जैसी नहीं हैं और न किन्ही दो प्रांतों में इन दरों की कर प्रणाली में कोई समानता है। इसलिए उप-समिति ने जिस रीति से आवंटन करने का सुझाव दिया है, उसमें संशोधन करने के लिए मैंने आयकर को जिस रूप में ग्रहण करने के बारे में, सदस्यों के प्रति पूर्ण आदर व्यक्त करते हुए, जो दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है, उसमें उक्त प्रकार की आपत्ति नहीं की जानी चाहिए। इससे सामान्य दिनों और आपात स्थिति, दोनों ही स्थितियों की आवश्यकता की पूर्ति हो जाती है।

मैंने कल एक बात कही थी। मैं अपने उस कथन को वापस लेता हूं। मैंने कहा था कि मेरी योजना वही है, जो कराधान जांच समिति ने प्रस्तावित की थी। ऐसा एक गलती के कारण भूल से हो गया। यह गलती मेरी टिप्पणियों में थी, जिन्हें मैंने बहस के लिए तैयार किया था।

मुझे यह कहना चाहिए था कि उन्होंने इस पर विचार किया था, उन्होंने इसका सुझाव नहीं दिया था, हालांकि उन्हें इस बारे में कोई आपत्ति नहीं थी।

अगला विषय उप-समिति की रिपोर्ट का पैरा 12 है, जिसमें 'कराधान' की 'शेष शक्तियों' पर विचार किया गया है। उप-समिति ने यह अनुमान कर लिया है कि निर्णय इन शक्तियों को प्रांतों में निहित कर दिए जाने के पक्ष में होगा। इस आधार पर वह इस निर्णय पर पहुंची कि अनिर्धारित करों के लगाने की शक्ति इकाइयों के हाथों में होनी चाहिए। उप-समिति ने इसके लिए कोई कारण नहीं बताया है कि वह इस निष्कर्ष पर क्यों पहुंची है। लेकिन पैरा 12 में एक अंश है, जिसमें यह बताया गया है कि इस सुझाव के अलावा कोई दूसरा सुझाव देने में उप-समिति संवैधानिक आपत्ति होने का अनुभव करती है। इससे यह प्रतीत होता है कि उप-समिति का यही दृष्टिकोण है कि किसी भी संघ में कराधान की शेष शक्तियां इकाइयों में निहित होनी चाहिए। अब मेरा निवेदन है कि यह जरूरी नहीं कि संघ बनने के कारण ऐसा ही होता है। अगर आप कनाडा के संविधान की धारा 91, पैरा 3 को देखें कि कनाडा में, जिसके संविधान को सभी संघीय संविधान के रूप में स्वीकार करते हैं, वहां की केंद्रीय सरकार को कराधान संबंधी जो शक्तियां दी गई हैं, उन्हें किसी ऐसे परन्तुक से सीमित नहीं कर दिया गया है, जिसे उप-समिति ने अपनी सिफारिशों में शामिल किया है। मैंने जिस अंश का अभी उल्लेख किया है उसमें हर तरह की संभावित व्यापकता है। इस अंश में केंद्रीय सरकार को कराधान के मामले में पूरी की पूरी और असीमित शक्ति प्रदान की गई है, जितनी कि किसी केंद्रीय सरकार को दी जा सकती है। लेकिन शायद आप यह कह सकते हैं कि मैंने आपके सम्मुख एक गलत उदाहरण दिया, क्योंकि कनाडा के संविधान के तहत शेष शक्तियां इकाइयों में निहित न होकर वहां की केंद्रीय सरकार में निहित हैं। मैं आपको एक दूसरा उदाहरण देता हूं, जहां शेष शक्तियां इकाइयों में निहित हैं। यह है आस्ट्रेलिया का संविधान। यहां कराधान की शेष शक्तियां इकाइयों को नहीं दी गई हैं, बल्कि वे संघीय सरकार के लिए छोड़ दी गई हैं। आस्ट्रेलिया के संविधान की धारा 51, पैरा (2) में कहा गया है कि कराधान की शक्ति केंद्रीय सरकार में निहित होगी, बशर्ते यह विभिन्न राज्यों में या राज्यों के भागों में भेद करने के लिए नहीं होगी। अब इससे स्पष्ट और क्या कहा जा सकता है। यहां तक कहा गया है कि यह शक्ति इतनी ज्यादा व्यापक है कि आस्ट्रेलिया की संघीय सरकार के बारे में यह कहा जा सकता है कि इससे उसके हाथों में राज्यों की कराधान प्रणाली को नियंत्रित करने की शक्ति मिल गई है। यहां मैं मूर ने कॉमनवेल्थ और आस्ट्रेलिया (प्रथम संस्करण) नामक पुस्तक में जो टिप्पणी लिखी है, उसमें से उस अंश की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करता हूं, जिसमें इस विषय का विवेचन किया गया है। आस्ट्रेलिया के संघ को कराधान के बारे में कितनी अधिक शक्ति दी गई है, उसके बारे में वह लिखते हैं:

यह देखा गया है कि कॉमनवेल्थ की स्थापना के बाद राज्यों पर पाबंदी लग गई है कि वह कॉमनवेल्थ की संपत्ति पर कोई कर नहीं लगाएंगे, शायद यह कॉमनवेल्थ की भावना के हित में है और इसलिए कि एक समान सीमा शुल्क होने से वह कोई अन्य सीमा शुल्क या उत्पाद शुल्क नहीं लगाएंगे और न ही अंतर्राज्यीय व्यापार, वाणिज्य या आवागमन पर कोई अन्य कर लगाएंगे। इसके अलावा अन्य राज्यों में ब्रिटिश लोगों के साथ जो भेदभाव होता था, वह रद्द हो जाता है।

यह देखा गया है कि कॉमनवेल्थ की स्थापना के बाद राज्यों पर पाबंदी लग गई है कि वह कॉमनवेल्थ की संपत्ति पर कोई कर नहीं लगाएंगे, शायद यह कॉमनवेल्थ की भावना के हित में है और इसलिए कि एक समान सीमा शुल्क होने से वह कोई अन्य सीमा शुल्क या उत्पाद शुल्क नहीं लगाएंगे और न ही अंतर्राज्यीय व्यापार, वाणिज्य या आवागमन पर कोई अन्य कर लगाएंगे।

इसके बाद जो कुछ लिखा गया है, वह बहुत महत्वपूर्ण है:

अंततः यह बताया गया है, कि 'कराधान' के बारे में कामनवेल्थ की कानून बनाने की शक्ति होने से राज्यों के कराधान को नियंत्रित करने के लिए बहुत ही व्यापक अधिकार मिल जाते हैं। यह एक ऐसा संविधान है, जहां शेष शक्तियां राज्यों में निहित हैं, लेकिन वित्तीय मामलों में शेष शक्तियां राज्यों में नहीं, बल्कि संघीय सरकार में निहित हैं। अमरीका के संविधान के अनुच्छेद-1 को लीजिए। यहां पर भी कानून बनाने की शेष शक्तियां राज्यों में निहित हैं, संघीय सरकार में निहित नहीं हैं। फिर भी अमरीका के संविधान के अनुच्छेद-1 की धारा 8 में यह प्रावधान है:

कांग्रेस को कर, शुल्क, महसूल और उत्पाद शुल्क लगाने व वसूल करने, ऋण चुकाने, अमरीका की सामान्य सुरक्षा और

कल्याण की व्यवस्था करने का अधिकार होगा, लेकिन यह सभी शुल्क, महसूल और उत्पाद शुल्क सारे अमरीका में एक समान होंगे।

यहां पर भी आपको ऐसी कोई बात नहीं मिलती कि अमरीका में केंद्रीय सरकार की कराधान संबंधी शक्ति पर कोई भी अंकुश लगाया गया है। इसलिए जहां तक संवैधानिक कानून का संबंध है, उप-समिति ने जिस तरह की सिफारिश की है, उसके लिए कोई ठोस कारण नहीं मिलता।

मैं यह भी निवेदन करना चाहता हूं कि यह प्रश्न एक बिल्कुल बनावटी प्रश्न है, जो किसी भी देश में नहीं उठा है कि कराधान की शेष शक्तियां संघीय सरकार में निहित होनी चाहिएं या ये शेष शक्तियां प्रांतों में निहित होनी चाहिएं। यह प्रश्न भारत में क्यों उठा, उसका कारण यह है कि हमने अपने मौजूदा अंतरण विषयों में कराधान की एक बेतुकी प्रणाली शुरू की है, जिसे काराधान की अनुसूचियां कहा जाता है। यह कहीं पर भी नहीं है। इसे किसी भी सरकार ने या संघीय संविधान बनाने वाली किसी भी सत्ता ने कभी भी निर्धारित नहीं किया। हम लोग कराधान के क्षेत्र का ही विभाजन नहीं कर रहे हैं, बल्कि हम इन अनुसूचियों को रखकर एक खास तरीका और एक खास स्वरूप निश्चित कर रहे हैं, जिसके आधार पर कराधान की शक्ति का प्रयोग किया जाएगा। मैं इसे बिल्कुल भी जरूरी नहीं समझता। पहली बात तो यह कि इससे कराधान की प्रणाली लीक में बंध जाएगी और यह हमारे भावी एक्सचेकर चांसलरों के नए-नए तरीके सोचने की ताकत को कुंद कर देगी। मेरा ख्याल है कि कोई भी एक्सचेकर, चांसलर ऐसी वित्तीय प्रणाली की व्यवस्था करने का दायित्व लेना स्वीकार नहीं करेगा, जिसमें कराधान संबंधी उसकी शक्तियों के बारे में ही नहीं, बल्कि किसी खास कर को लगाने की इच्छा के संबंध में उसका विवेकाधिकार सीमित रहेगा।

इसलिए मेरा विचार है कि हम अपने संविधान में से इन अनुसूचियों को बिल्कुल निकाल दें और कराधान के क्षेत्र का उस रीति से विभाजन करें, जैसा कि अन्य संघीय देशों में किया जाता है, अर्थात प्रांतीय सरकारों पर एक साधारण-सी पाबंदी लगी होती है कि संघीय सरकार जो भी सीमा शुल्क या उत्पाद शुल्क लगाना चाहेगी, प्रांतीय सरकारें उस कर-राशि का उपयोग नहीं करेंगी और बाकी कर-राशि दोनों सरकारें, जिस प्रकार चाहेंगी आपस में विभाजित कर लेंगी। मेरा कहना है कि अन्य संघीय देशों में ठीक यही किया गया है। इसलिए मेरा विचार है कि हमें अपने संविधान में कराधान की शेष शक्तियों वाले इस सिद्धांत को शामिल करने की कोई जरूरत नहीं है।

यह प्रश्न एक बिल्कुल बनावटी प्रश्न है, जो किसी भी देश में नहीं उठा है कि कराधान की शेष शक्तियां संघीय सरकार में निहित होनी चाहिएं या ये शेष शक्तियां प्रांतों में निहित होनी चाहिए। यह प्रश्न भारत में क्यों उठा, उसका कारण यह है कि हमने अपने मौजूदा अंतरण विषयों में कराधान की एक बेतुकी प्रणाली शुरू की है, जिसे काराधान की अनुसूचियां कहा जाता है। यह कहीं पर भी नहीं है। इसे किसी भी सरकार ने या संघीय संविधान बनाने वाली किसी भी सत्ता ने कभी भी निर्धारित नहीं किया।

अब मैं संघीय वित्त में राज्यों की स्थिति पर कुछ कहना चाहता हूं। जब मैंने उप-समिति की रिपोर्ट में इस पक्ष को पढ़ा, तब मैंने सहज ही यह देखने की कोशिश की कि संघीय सरकार को अपने वित्तीय संसाधनों में शामिल करने के लिए राज्यों से राजस्व की कौन-सी मद प्राप्त हुई है। मैं देखता हूं कि राज्यों द्वारा कोई भी अतिरिक्त संसाधन संघीय सरकार को नहीं दिया गया है। जहां तक सीमा शुल्क का संबंध है, स्पष्ट है कि यह राजस्व कभी भी राज्यों का राजस्व नहीं रहा जिसके बारे में उसका कोई दावा नहीं हो सकता। इसलिए उन्होंने इसके अधीन अपने ऊपर कोई अतिरिक्त भार नहीं लिया। जहां तक नमक के बारे में प्रश्न उठता है, यह एक ऐसा राजस्व है जिस पर खरीद के कारण भारत सरकार का अधिकार निहित है, राज्यों का नहीं। जहां तक मुद्रा लाभों का प्रश्न है, यह तो ब्रिटिश भारत के हिसाब में जाएगा। हस्तांतरित क्षेत्रों के नकद अंशदान और राजस्व का जहां तक संबंध है, यह तो केंद्रीय सरकार के राजस्व का स्रोत रहे हैं और यह स्थिति संघ के बिना भी रहती। इसलिए स्पष्ट है कि संघ में शामिल होने पर राज्य कोई ऐसी मद नहीं छोड़ेंगे, जिस पर उनका कोई अधिकार कहा जा सकता हो। मैं उनका केवल एक ही योगदान देख रहा हूं और वह है, भारत की सुरक्षा के सैन्य बल पर उनका योगदान। भारत सरकार द्वारा बनाई गई इस कमेटी की रिपोर्ट के आंकड़ों को देखने पर पता

चलता है कि इस समय सेना पर राज्यों के द्वारा खर्च की जाने वाली राशि नगण्य है, अर्थात सिर्फ 2 करोड़ और 38 लाख रूपये हैं।

मैंने इस रिपोर्ट में दूसरी बात जो देखनी चाही, वह यह है कि संघ के वित्तीय खर्च के बारे में प्रांतों और राज्यों की बतायी गई तुलनात्मक जवाबदेही। जब मैंने इस प्रश्न पर विचार किया, तब मैंने देखा कि समानता के सिद्धांत को बिल्कुल ही हवा में उड़ा दिया गया है। कृपया आप भी इस सारी रिपोर्ट में इस असमानता पर ध्यान दें। पहली, प्रांतों को संघ सरकार के प्रत्यक्ष कर और अप्रत्यक्ष कर, दोनों को वहन करना होगा। राज्यों को केवल प्रत्यक्ष कर वहन करना है। समिति ने इस बात पर भी जोर नहीं दिया है कि ये राज्य कंपनी कर को वहन करें। ये राज्य प्रत्यक्ष कर तो वहन करेंगे ही नहीं, बल्कि इनको ऐसे प्रत्यक्ष करों से भी छूट दे दी जाएगी, जो ये इस समय वहन कर रहे हैं, ये हैं नजराना और नकद अंशदान। दूसरी, प्रांतों को अपने यहां सीमा शुल्क लगाने की मनाही की गई है, लेकिन राज्यों के लिए इन शुल्कों को अपने यहां लगाने का हक बरकारार रखा गया है। यह इस बात के बावजूद है कि उप-समिति स्वीकार करती है कि संघ बनाने का एक उद्देश्य यह है कि सारे संघ-क्षेत्र में वाणिज्य पर कोई पाबंदी नहीं रहे। समिति इस बात को भी स्वीकार करती है कि आंतरिक सीमा शुल्क पर राज्यों का हक बने रहने से संघीय सरकार की आय पर बुरा असर पड़ेगा। तीसरी, प्रांतों को संघीय सरकार से ऋण लेने के लिए अपने राजस्व को जमानत के तौर पर रखना होगा, लेकिन राज्य दायित्व के इस बोझ से मुक्त रहेंगे, जो हालांकि संघ की वैसी ही इकाइयां है, जैसे कि सारे प्रांत हैं।

राज्यों को आंतरिक सीमा शुल्क रखने का जो हक बरकरार रखा गया है, उसके कारण हर कोई समझ सकता है। हम जानते हैं कि अगर उन्हें उनका अपना आंतरिक शुल्क देने के लिए मजबूर किया गया, तो उनकी वित्तीय स्थिति गड़बड़ा जाएगी। लेकिन हम यह नहीं समझ पाते कि उप-समिति ने राज्यों को संघीय सरकार के प्रत्यक्ष बोझ को वहन न करने की छूट क्यों दी, न हम उन कारणों को ही समझ पाते हैं जिनसे प्रेरित हो कर उप-समिति को इस बात की सिफारिश करनी पड़ी कि संघ सरकार से ऋण लेने के लिए राज्यों को अपने राजस्व को जमानत के तौर पर रखने की जरूरत नहीं है।

अध्यक्ष महोदय! समारोहों के अवसरों पर प्रांतों और राज्यों के भेद को मंजूर किया जा सकता है। हम सलामियां नहीं लिया करेंगे और इन मामलों में हम उन्हें वह सब कुछ देने के लिए तैयार हैं, जो वह चाहें। लेकिन जब घन का मामला आएगा, तो मेरा ख्याल है कि हमें 'कामकाज में कामकाज की बात' वाला सिद्धांत ही अपनाना चाहिए।

अध्यक्ष महोदय! समारोहों के अवसरों पर प्रांतों और राज्यों के भेद को मंजूर किया जा सकता है। हम सलामियां नहीं लिया करेंगे और इन मामलों में हम उन्हें वह सब कुछ देने के लिए तैयार हैं, जो वह चाहें। लेकिन जब घन का मामला आएगा, तो मेरा ख्याल है कि हमें 'कामकाज में कामकाज की बात' वाला सिद्धांत ही अपनाना चाहिए। अगर संघ के हित में ब्रिटिश भारत त्याग कर रहा है, तब अन्य इकाइयों से संघ के हित में वैसा ही त्याग करने के लिए कहने का उसे पूरा अधिकार है। इसलिए मैं समिति की रिपोर्ट के इस भाग में निम्नलिखित संशोधन करने का अनुरोध करता हूं :

(1) राज्यों को प्रत्यक्ष कर पर संघीय सरकार का हक स्वीकार करना चाहिए। जब तक यह नहीं होता है, तब तक नकद अंशदान का भुगतान नहीं किया जाना चाहिए।

(2) एक ऐसी समय सीमा निर्धारित की जानी चाहिए, जिसमें राज्यों को अपनी वित्तीय प्रणाली में समुचित परिवर्तन कर अपने आंतरिक सीमा शुल्कों को समाप्त करना होगा, जिससे संघीय सरकार की वित्तीय प्रणाली पर कोई भी बुरा प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए।

(3) संघीय सरकार से ऋणों के लिए राज्यों को अपना राजस्व जमानत के रूप में न रखना होगा।

अध्यक्ष महोदय! इस संबंध में बस मुझे यही कहना था।

अड़तीसवीं बैठक-22 अक्तूबर 1931
मद संख्या 4
(संघीय सरकार और उसकी इकाइयों के बीच वित्तीय संसाधनों का वितरण)
संघीय वित्त उप-समिति की रिपोर्ट पर विचार

डॉ॰ अम्बेडकर* : मैं एक बात कहना चाहता हूं। लार्ड पील ने अभी कहा कि संघीय वित्त उप-समिति की रिपोर्ट में, जो सिद्धांत दिए गए हैं, उन पर हम सबकी आम सहमति थी। अब संघीय संरचना समिति के बाकी अन्य सदस्यों की जो भी राय रही हो, मैं अपनी बात कहना चाहता हूं कि मैं निश्चित रूप से संघीय वित्त उप-समिति द्वारा बनाए गए सिद्धांतों से सहमत नहीं हूं। मैं यह भी कहना चाहता हूं कि मुझे इस समिति की स्थापना पर कोई आपत्ति नहीं है, बशर्ते यह स्पष्ट हो जाए कि इस समिति को सिद्धांतों में परिवर्तन और संशोधन सुझाने का

अधिकार है, जिससे संघीय सरकार की भावी वित्त व्यवस्था एक स्वस्थ व्यवस्था बने।

मद संख्या 8
(संघीय न्यायालय)

डॉ॰ अम्बेडकर* : अध्यक्ष महोदय! मुझे ऐसा लगता है कि भारत में संघीय न्यायालय की स्थापना के प्रश्न पर विचार करते समय हमारा संबंध तीन प्रश्नों से है। पहला प्रश्न है, संघीय न्यायालय का कार्यक्षेत्र, दूसरा है, संघीय न्यायालय के निर्णयों के फैसलों का कार्यान्वयन और तीसरा है, संघीय न्यायालय का गठन। मैं इन तीनों मुद्दों पर अपने विचार, प्रस्तुत करूंगा। सबसे पहले मैं संघीय न्यायालय के कार्यक्षेत्र के बारे में कह रहा हूं।

यह सर्वस्वीकृत तथ्य है कि संघीय न्यायालय का एक कार्य संघीय संविधान की व्याख्या करना है। एकात्मक सरकार प्रणाली के विपरीत संघीय सरकार की एक उल्लेखनीय विशेषता यह होती है कि संघीय सरकार में कार्यों का वितरण हुआ रहता है, जो संघ की बुनियाद होती है। वहां दो कार्यक्षेत्र होते हैं, एक कार्यक्षेत्र कानूनी तौर पर संघीय सरकार को आवंटित होता है और दूसरा राज्य या प्रांतीय सरकार को आवंटित होता है। किसी संघ में महत्वपूर्ण बात यह देखना है कि किसी एक का कार्यक्षेत्र दूसरे के कार्यक्षेत्र में दखल न करे। यही सुनिश्चित करने के लिए संघीय न्याय-व्यवस्था जरूरी हो जाती है, जो दोनों सरकारों को अपने-अपने कार्यक्षेत्र तक सीमित रखती है। यही एक प्रयोजन है, जिसके लिए संघीय न्यायालय का होना जरूरी हो जाता है। लेकिन मुझे लगता है कि एक दूसरा कार्य भी है, जिसे संघीय न्यायालय को पूरा करना चाहिए। संघीय न्यायालय की न्याय-व्यवस्था का एक पक्ष और है जिसे अंतर्राष्ट्रीय न्याय का न्यायालय कहा जाता है जिन उद्देश्यों से बहुत सी राष्ट्रीय सरकारें आपस में मिलकर एक संघ बनाती हैं, उनमें से एक उद्देश्य यह है कि विभिन्न सरकारों और विभिन्न इकाइयों के बीच जो विवाद संघ बनने के पहले कूटनीति या लोकतंत्र के विफल होने पर युद्ध के द्वारा तय होते थे, वह संघीय न्यायालय के कानूनी निर्णयों द्वारा तय किए जाने चाहिए, जिसके अधीन वे सभी होती हैं। यह दृष्टिकोण अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय ने स्वयं निर्दिष्ट किया था। अगर आपकी अनुमति हो, तो मैं लुइसाना बनाम टेक्सास, 176, यू.एस. मामलें में दिए गए अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों में से एक निर्णय से एक छोटे से पैराग्राफ को पढ़ना चाहता हूं।

बहुत से ऐसे मामले हैं जो किसी संघ में उठ सकते हैं और जिनका निर्णय संघ के अभाव में कूटनीति या युद्ध के माध्यम से किया जाता है। इसलिए ऐसे विनाश से बचने के लिए संघीय न्याय-व्यवस्था को इस बात के लिए संघीय न्यायालय के व्यापक कार्यक्षेत्र का प्रावधान करना होगा, जिससे इन सभी मामलों में न्याय किया जा सके।

अध्यक्ष : इसकी तारीख क्या है?

डॉ॰ अम्बेडकर : 1900, न्यायमूर्ति श्री ब्राउन ने सर्वोच्च न्यायालय के कार्य के बारे में कहा है:

इस बात को ध्यान में रखते हुए कि अपने-अपने नागरिकों के हित के बारे में राज्य सदियों से चिंता करते आए हैं और व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा के लिए राज्यों द्वारा अक्सर लड़ाइयां लड़ी जाती रही हैं, जैसे पिछला स्वतंत्रता युद्ध, इग्लैंड और चीन के बीच 1840 का अफीम युद्ध और दक्षिणी अफ्रीका में इस समय इग्लैंड और ट्रांसवाल गणतंत्र के बीच हो रहा युद्ध, इन लड़ाइयों के उल्लेखनीय उदाहरण हैं और इस बात को भी ध्यान में रखते हुए कि वैयक्तिक अधिकारों की रक्षा के लिए संधियां की जाती हैं और व्यक्तिगत पक्षों के अधिकारों का समाधान करने के लिए लगातार अंतर्राष्ट्रीय ट्रिब्यूनलों की स्थापना की जा रही है, यह एक अनोखी नियम-विरूद्ध बात होगी कि इस संघ का राज्य जिसे दूसरे राज्य के विरूद्ध युद्ध छेड़ने का निषेध है, इस न्यायालय से ऐसा प्रतिरोध के लिए अनुरोध न करे, जो दूसरे राज्य द्वारा उसके नागरिक और उसकी संपत्ति पर लागू किया जा चुका है। यह प्रतिरोध, हालांकि कोई युद्ध का कार्य नहीं है, युद्ध छेड़ने के पूर्व आरंभिक कार्रवाई के रूप में अक्सर व्यवहृत होता रहा है और इसे कुछ मामलों में युद्ध की कार्रवाही को उचित सिद्ध करने के लिए यथेष्ट कार्रवाई समझा जाता है।

वह आगे कहते हैं कि बहुत से ऐसे मामले हैं जो किसी संघ में उठ सकते हैं और जिनका निर्णय संघ के अभाव में कूटनीति या युद्ध के माध्यम से किया जाता है। इसलिए ऐसे विनाश से बचने के लिए संघीय न्याय-व्यवस्था को इस बात के लिए संघीय न्यायालय के व्यापक कार्यक्षेत्र का प्रावधान करना होगा, जिससे इन सभी मामलों में न्याय किया जा सके। अध्यक्ष महोदय! इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए मेरा ख्याल है कि आपने संघीय न्यायालय के कार्यक्षेत्र के संबंध में जिस योजना की रूपरेखा समिति को संबोधित करते हुए कल अपने भाषण में बताई थी, क्षमा करें वह बहुत अपर्याप्त थी। ■

(शेष अगले अंक में)

स्वतंत्रता दिवस 2014 के अवसर पर लाल किले के प्राचीर से प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी का संबोधन

मेरे प्यारे देशवासियों,

आज देश और दुनिया में फैले हुए सभी हिन्दुस्तानी आज़ादी का पर्व मना रहे हैं। इस आज़ादी के पावन पर्व पर प्यारे देशवासियों को भारत के प्रधान सेवक की अनेक-अनेक शुभकामनाएँ।

मैं आपके बीच प्रधानमंत्री के रूप में नहीं, प्रधान सेवक के रूप में उपस्थित हूँ। देश की आज़ादी की जंग कितने वर्षों तक लड़ी गई, कितनी पीढ़ियाँ खप गईं, अनगिनत लोगों ने बलिदान दिए, जवानी खपा दी, जेल में ज़िन्दगी गुज़ार दी। देश की आज़ादी के लिए मर-मिटने वाले समर्पित उन सभी आज़ादी के सिपाहियों को मैं शत-शत वंदन करता हूँ, नमन करता हूँ।

आज़ादी के इस पावन पर्व पर भारत के कोटि-कोटि जनों को भी मैं प्रणाम करता हूँ और आज़ादी की जंग के लिए जिन्होंने कुर्बानियाँ दीं, उनका पुण्य स्मरण करते हुए आज़ादी के इस पावन पर्व पर माँ भारती के कल्याण के लिए हमारे देश के गरीब, पीड़ित, दलित, शोषित, समाज के पिछड़े हुए सभी लोगों के कल्याण का, उनके लिए कुछ न कुछ कर गुजरने का संकल्प करने का पर्व है।

मेरे प्यारे देशवासियों, राष्ट्रीय पर्व, राष्ट्रीय चरित्र को निखारने का एक अवसर होता है। राष्ट्रीय पर्व से प्रेरणा ले करके भारत के राष्ट्रीय चरित्र, जन-जन का चरित्र जितना अधिक निखरे, जितना अधिक राष्ट्र के लिए समर्पित हो, सारे कार्यकलाप राष्ट्रहित की कसौटी पर कसे जाएँ, अगर उस प्रकार का जीवन जीने का हम संकल्प करते हैं, तो आज़ादी का पर्व भारत को नई ऊँचाइयों पर ले जाने का एक प्रेरणा पर्व बन सकता है।

मेरे प्यारे देशवासियों, यह देश राजनेताओं ने नहीं बनाया है, यह देश शासकों ने नहीं बनाया है, यह देश सरकारों ने भी नहीं बनाया है, यह देश हमारे किसानों ने बनाया है, हमारे मजदूरों ने बनाया है, हमारी माताओं और बहनों ने बनाया है, हमारे नौजवानों ने बनाया है, हमारे देश के ऋषियों ने, मुनियों ने, आचार्यों ने, शिक्षकों ने, वैज्ञानिकों ने, समाजसेवकों ने, पीढ़ी दर पीढ़ी कोटि-कोटि जनों की तपस्या से आज राष्ट्र यहाँ पहुँचा है। देश के लिए जीवन भर साधना करने वाली ये सभी पीढ़ियाँ, सभी महानुभाव अभिनन्दन के अधिकारी हैं। यह भारत के संविधान की शोभा है, भारत के संविधान का सामर्थ्य है कि एक छोटे से नगर के गरीब परिवार के एक बालक ने आज लाल किले की प्राचीर पर भारत के तिरंगे झण्डे के सामने सिर झुकाने का सौभाग्य प्राप्त किया। यह भारत के लोकतंत्र की ताकत है, यह भारत के संविधान रचयिताओं की हमें दी हुई अनमोल सौगात है। मैं भारत के संविधान के निर्माताओं को इस पर नमन करता हूँ।

भाइयों एवं बहनों, आज़ादी के बाद देश आज जहाँ पहुँचा है, उसमें इस देश के सभी प्रधान मंत्रियों का योगदान है, इस देश की सभी सरकारों का योगदान है, इस देश के सभी राज्यों की सरकारों का भी योगदान है। मैं वर्तमान भारत को उस ऊँचाई पर ले जाने का प्रयास करने वाली सभी पूर्व सरकारों को, सभी पूर्व प्रधानमंत्रियों को, उनके सभी कामों को, जिनके कारण राष्ट्र का गौरव बढ़ा है, उन सबके प्रति इस पल आदर का भाव व्यक्त करना चाहता हूँ, मैं आभार की अभिव्यक्ति करना चाहता हूँ।

यह देश पुरातन सांस्कृतिक धरोहर की उस नींव पर खड़ा है, जहाँ पर वेदकाल में हमें एक ही मंत्र सुनाया जाता है, जो हमारी कार्य संस्कृति का परिचय है, हम सीखते आए हैं, पुनर्स्मरण करते आए हैं- 'संगच्छध्वम् संवदध्वम् सं वो मनांसि जानताम्।' हम साथ चलें, मिलकर चलें, मिलकर सोचें, मिलकर संकल्प करें और मिल करके हम देश को आगे बढ़ाएँ। इस

मूल मंत्र को ले करके सवा सौ करोड़ देशवासियों ने देश को आगे बढ़ाया है। कल ही नई सरकार की प्रथम संसद के सत्र का समापन हुआ। मैं आज गर्व से कहता हूं कि संसद का सत्र हमारी सोच की पहचान है, हमारे इरादों की अभिव्यक्ति है। हम बहुमत के बल पर चलने वाले लोग नहीं हैं, हम बहुमत के बल पर आगे बढ़ना नहीं चाहते हैं। हम सहमति के मजबूत धरातल पर आगे बढ़ना चाहते हैं। 'संगच्छध्वम्' और इसलिए इस पूरे संसद के कार्यकाल को देश ने देखा होगा। सभी दलों को साथ लेकर, विपक्ष को जोड़कर, कंधे से कंधा मिलाकर चलने में हमें अभूतपूर्व सफलता मिली है और उसका यश सिर्फ प्रधानमंत्री को नहीं जाता है, उसका यश सिर्फ सरकार में बैठे हुए लोगों को नहीं जाता है, उसका यश प्रतिपक्ष को भी जाता है, प्रतिपक्ष के सभी नेताओं को भी जाता है, प्रतिपक्ष के सभी सांसदों को भी जाता है और लाल किले की प्राचीर से, गर्व के साथ, मैं इन सभी सांसदों का अभिवादन करता हूं। सभी राजनीतिक दलों का भी अभिवादन करता हूं, जहां सहमति के मजबूत धरातल पर राष्ट्र को आगे ले जाने के महत्त्वपूर्ण निर्णयों को कर-करके हमने कल संसद के सत्र का समापन किया।

भाइयों-बहनों, मैं दिल्ली के लिए आउटसाइडर हूं, मैं दिल्ली की दुनिया का इंसान नहीं हूं। मैं यहां के राज-काज को भी नहीं जानता। यहां की एलीट क्लास से तो मैं बहुत अछूता रहा हूं, लेकिन एक बाहर के व्यक्ति ने, एक आउटसाइडर ने दिल्ली आ करके पिछले दो महीने में, एक इनसाइडर व्यू लिया, तो मैं चौंक गया! यह मंच राजनीति का नहीं है, राष्ट्रनीति का मंच है और इसलिए मेरी बात को राजनीति के तराजू से न तोला जाए। मैंने पहले ही कहा है, मैं सभी पूर्व प्रधानमंत्रियों, पूर्व सरकारों का अभिवादन करता हूं, जिन्होंने देश को यहां तक पहुंचाया। मैं बात कुछ और करने जा रहा हूं और इसलिए इसको राजनीति के तराजू से न तोला जाए। मैंने जब दिल्ली आ करके एक इनसाइडर व्यू देखा, तो मैंने अनुभव किया, मैं चौंक गया। ऐसा लगा जैसे एक सरकार के अंदर भी दर्जनों अलग-अलग सरकारें चल रही हैं। हरेक की जैसे अपनी-अपनी जागीरें बनी हुई हैं। मुझे बिखराव नज़र आया, मुझे टकराव नज़र आया। एक डिपार्टमेंट दूसरे डिपार्टमेंट से भिड़ रहा है और यहां तक भिड़ रहा है कि सुप्रीम कोर्ट के दरवाजे खट-खटाकर एक ही सरकार के दो डिपार्टमेंट आपस में लड़ाई लड़ रहे हैं। यह बिखराव, यह टकराव, एक ही देश के लोग! हम देश को कैसे आगे बढ़ा सकते हैं? और इसलिए मैंने कोशिश प्रारम्भ की है, उन दीवारों को गिराने की, मैंने कोशिश प्रारम्भ की है कि सरकार एक असेम्बल्ड एन्टिटी नहीं, लेकिन एक ऑर्गेनिक युनिटी बने, ऑर्गेनिक एन्टिटी बने। एकरस हो सरकार – एक लक्ष्य, एक मन, एक दिशा, एक गति, एक मति – इस मुकाम पर हम देश को चलाने का संकल्प करें। हम चल सकते हैं। आपने कुछ दिन पहले. .. इन दिनों अखबारों में चर्चा चलती है कि मोदी जी की सरकार आ गई, अफसर लोग समय पर ऑफिस जाते हैं, समय पर ऑफिस खुल जाते हैं, लोग पहुंच जाते हैं। मैं देख रहा था, हिन्दुस्तान के नेशनल न्यूज़पेपर कहे जाएं, टीवी मीडिया कहा जाए, प्रमुख रूप से ये खबरें छप रही थीं। सरकार के मुखिया के नाते तो मुझे आनन्द आ सकता है कि देखो भाई, सब समय पर चलना शुरू हो गया, सफाई होने लगी, लेकिन मुझे आनन्द नहीं आ रहा था, मुझे पीड़ा हो रही थी। वह बात मैं आज पब्लिक में कहना चाहता हूं। इसलिए कहना चाहता हूं कि इस देश में सरकारी अफसर समय पर दफ्तर जाएं, यह कोई न्यूज़ होती है क्या? और अगर वह न्यूज़ बनती है, तो हम कितने नीचे गए हैं, कितने गिरे हैं, इसका वह सबूत बन जाती है और इसलिए भाइयों-बहनों, सरकारें कैसे चली हैं? आज वैश्विक स्पर्धा में कोटि-कोटि भारतीयों के सपनों को साकार करना होगा तो यह 'होती है', 'चलती है', से देश नहीं चल सकता। जन-सामान्य की आशा-आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए, शासन व्यवस्था नाम का जो पुर्जा है, जो मशीन है, उसको और धारदार बनाना है, और तेज बनाना है, और गतिशील बनाना है और उस दिशा में हम प्रयास कर रहे हैं और मैं आपको विश्वास देता हूं, मेरे देशवासियो, इतने कम समय से दिल्ली के बाहर से आया हूं, लेकिन मैं देशवासियों को विश्वास दिलाता हूं कि सरकार में बैठे हुए लोगों का सामर्थ्य बहुत है – चपरासी से लेकर कैबिनेट सेक्रेटरी तक हर कोई सामर्थ्यवान है, हरेक की एक शक्ति है, उसका अनुभव है। मैं उस शक्ति को जगाना चाहता हूं, मैं उस शक्ति को जोड़ना चाहता हूं और उस शक्ति के माध्यम से राष्ट्र कल्याण की गति को तेज करना चाहता हूं और मैं करके रहूंगा। यह हम पाकर रहेंगे, हम करके रहेंगे, यह मैं देशवासियों को विश्वास दिलाना चाहता हूं और यह मैं 16 मई को नहीं कह सकता था, लेकिन आज दो-ढ़ाई महीने के अनुभव के बाद, मैं 15 अगस्त को तिरंगे झंडे के साक्ष्य से कह रहा हूं, यह संभव है, यह होकर रहेगा।

भाइयों-बहनों, क्या देश के हमारे जिन महापुरुषों ने आज़ादी दिलाई, क्या उनके सपनों का भारत बनाने के लिए हमारा भी कोई कर्तव्य है या नहीं है, हमारा भी कोई राष्ट्रीय चरित्र है या नहीं है? उस पर गंभीरता से सोचने का समय आ गया है।

भाइयों-बहनों, कोई मुझे बताए कि हम जो भी कर रहे हैं दिन भर, शाम को कभी अपने आपसे पूछा कि मेरे इस काम के कारण मेरे देश के गरीब से गरीब का भला हुआ या नहीं हुआ, मेरे देश के हितों की रक्षा हुई या नहीं हुई, मेरे देश के

कल्याण के काम में आया या नहीं आया? क्या सवा सौ करोड़ देशवासियों का यह मंत्र नहीं होना चाहिए कि जीवन का हर कदम देशहित में होगा? दुर्भाग्य कैसा है? आज देश में एक ऐसा माहौल बना हुआ है कि किसी के पास कोई भी काम लेकर जाओ, तो कहता है, 'इसमें मेरा क्या'? वहीं से शुरू करता है, 'इसमें मेरा क्या' और जब उसको पता चलेगा कि इसमें उसका कुछ नहीं है, तो तुरन्त बोलता है, 'तो फिर मुझे क्या'? 'ये मेरा क्या' और 'मुझे क्या', इस दायरे से हमें बाहर आना है। हर चीज़ अपने लिए नहीं होती है। कुछ चीज़ें देश के लिए भी हुआ करती हैं और इसलिए हमारे राष्ट्रीय चरित्र को हमें निखारना है। 'मेरा क्या', 'मुझे क्या', उससे ऊपर उठकर 'देशहित के हर काम के लिए मैं आया हूं, मैं आगे हूं', यह भाव हमें जगाना है।

भाइयों-बहनों, आज जब हम बलात्कार की घटनाओं की खबरें सुनते हैं, तो हमारा माथा शर्म से झुक जाता है। लोग अलग-अलग तर्क देते हैं, हर कोई मनोवैज्ञानिक बनकर अपने बयान देता है, लेकिन भाइयों-बहनों, मैं आज इस मंच से मैं उन माताओं और उनके पिताओं से पूछना चाहता हूं, हर मां-बाप से पूछना चाहता हूं कि आपके घर में बेटी 10 साल की होती है, 12 साल की होती है, मां और बाप चौकन्ने रहते हैं, हर बात पूछते हैं कि कहां जा रही हो, कब आओगी, पहुंचने के बाद फोन करना। बेटी को तो सैकड़ों सवाल मां-बाप पूछते हैं, लेकिन क्या कभी मां-बाप ने अपने बेटे को पूछने की हिम्मत की है कि कहां जा रहे हो, क्यों जा रहे हो, कौन दोस्त है? आखिर बलात्कार करने वाला किसी न किसी का बेटा तो है। उसके भी तो कोई न कोई मां-बाप हैं। क्या मां-बाप के नाते, हमने अपने बेटे को पूछा कि तुम क्या कर रहे हो, कहां जा रहे हो? अगर हर मां-बाप तय करे कि हमने बेटियों पर जितने बंधन डाले हैं, कभी बेटों पर भी डाल करके देखो तो सही, उसे कभी पूछो तो सही।

भाइयों-बहनों, कानून अपना काम करेगा, कठोरता से करेगा, लेकिन समाज के नाते भी, हर मां-बाप के नाते हमारा दायित्व है। कोई मुझे कहे, यह जो बंदूक कंधे पर उठाकर निर्दोषों को मौत के घाट उतारने वाले लोग कोई माओवादी होंगे, कोई आतंकवादी होंगे, वे किसी न किसी के तो बेटे हैं। मैं उन मां-बाप से पूछना चाहता हूं कि अपने बेटे से कभी इस रास्ते पर जाने से पहले पूछा था आपने? हर मां-बाप जिम्मेवारी ले, इस गलत रास्ते पर गया हुआ आपका बेटा निर्दोषों की जान लेने पर उतारू है। न वह अपना भला कर पा रहा है, न परिवार का भला कर पा रहा है और न ही देश का भला कर पा रहा है और मैं हिंसा के रास्ते पर गए हुए, उन नौजवानों से कहना चाहता हूं कि आप जो भी आज हैं, कुछ न कुछ तो भारतमाता ने आपको दिया है, तब पहुंचे हैं। आप जो भी हैं, आपके मां-बाप ने आपको कुछ तो दिया है, तब हैं। मैं आपसे पूछना चाहता हूं, कंधे पर बंदूक ले करके आप धरती को लाल तो कर सकते हो, लेकिन कभी सोचो, अगर कंधे पर हल होगा, तो धरती पर हरियाली होगी, कितनी प्यारी लगेगी। कब तक हम इस धरती को लहूलुहान करते रहेंगे? और हमने पाया क्या है? हिंसा के रास्ते ने हमें कुछ नहीं दिया है।

भाइयों-बहनों, मैं पिछले दिनों नेपाल गया था। मैंने नेपाल में सार्वजनिक रूप से पूरे विश्व को आकर्षित करने वाली एक बात कही थी। एक ज़माना था, सम्राट अशोक जिन्होंने युद्ध का रास्ता लिया था, लेकिन हिंसा को देख करके युद्ध छोड़, बुद्ध के रास्ते पर चले गए। मैं देख रहा हूं कि नेपाल में कोई एक समय था, जब नौजवान हिंसा के रास्ते पर चल पड़े थे, लेकिन आज वही नौजवान संविधान की प्रतीक्षा कर रहे हैं। उन्हीं के साथ जुड़े लोग संविधान के निर्माण में लगे हैं और मैंने कहा था, शस्त्र छोड़कर शास्त्र के रास्ते पर चलने का अगर नेपाल एक उत्तम उदाहरण देता है, तो विश्व में हिंसा के रास्ते पर गए हुए नौजवानों को वापस आने की प्रेरणा दे सकता है।

भाइयों-बहनों, बुद्ध की भूमि, नेपाल अगर संदेश दे सकती है, तो क्या भारत की भूमि दुनिया को संदेश नहीं दे सकती है? और इसलिए समय की मांग है, हम हिंसा का रास्ता छोड़ें, भाईचारे के रास्ते पर चलें।

भाइयों-बहनों, सदियों से किसी न किसी कारणवश साम्प्रदायिक तनाव से हम गुजर रहे हैं, देश विभाजन तक हम पहुंच गए। आज़ादी के बाद भी कभी जातिवाद का जहर, कभी सम्प्रदायवाद का जहर, ये पापाचार कब तक चलेगा? किसका भला होता है? बहुत लड़ लिया, बहुत लोगों को काट लिया, बहुत लोगों को मार दिया। भाइयों-बहनों, एक बार पीछे मुड़कर देखिए, किसी ने कुछ नहीं पाया है। सिवाय भारत मां के अंगों पर दाग लगाने के हमने कुछ नहीं किया है और इसलिए, मैं देश के उन लोगों का आह्वान करता हूं कि जातिवाद का जहर हो, सम्प्रदायवाद का जहर हो, आतंकवाद का जहर हो, ऊंच-नीच का भाव हो, यह देश को आगे बढ़ाने में रुकावट है। एक बार मन में तय करो, दस साल के लिए मोरेटोरियम तय करो, दस साल तक इन तनावों से हम मुक्त समाज की ओर जाना चाहते हैं और आप देखिए, शांति, एकता, सद्भावना, भाईचारा हमें आगे बढ़ने में कितनी ताकत देता है, एक बार देखो।

मेरे देशवासियों, मेरे शब्दों पर भरोसा कीजिए, मैं आपको विश्वास दिलाता हूं। अब तक किए हुए पापों को, उस रास्ते को छोड़ें, सद्भावना, भाईचारे का रास्ता अपनाएं और हम देश को आगे ले जाने का संकल्प करें। मुझे विश्वास है कि हम इसको कर सकते हैं।

भाइयों-बहनों, जैसे-जैसे विज्ञान आगे बढ़ रहा है, आधुनिकता का हमारे मन में एक भाव जगता है, पर हम करते क्या हैं? क्या कभी सोचा है कि आज हमारे देश में सेक्स रेशियो का क्या हाल है? 1 हजार लड़कों पर 940 बेटियाँ पैदा होती हैं। समाज में यह असंतुलन कौन पैदा कर रहा है? ईश्वर तो नहीं कर रहा है। मैं उन डॉक्टरों से अनुरोध करना चाहता हूं कि अपनी तिजोरी भरने के लिए किसी माँ के गर्भ में पल रही बेटी को मत मारिए। मैं उन माताओं, बहनों से कहता हूं कि आप बेटे की आस में बेटियों को बलि मत चढ़ाइए। कभी-कभी माँ-बाप को लगता है कि बेटा होगा, तो बुढ़ापे में काम आएगा। मैं सामाजिक जीवन में काम करने वाला इंसान हूं। मैंने ऐसे परिवार देखे हैं कि पाँच बेटे हों, पाँचों के पास बंगले हों, घर में दस-दस गाड़ियाँ हों, लेकिन बूढ़े माँ-बाप ओल्ड एज होम में रहते हैं, वृद्धाश्रम में रहते हैं। मैंने ऐसे परिवार देखे हैं। मैंने ऐसे परिवार भी देखे हैं, जहाँ संतान के रूप में अकेली बेटी हो, वह बेटी अपने सपनों की बलि चढ़ाती है, शादी नहीं करती और बूढ़े माँ-बाप की सेवा के लिए अपने जीवन को खपा देती है। यह असमानता, माँ के गर्भ में बेटियों की हत्या, इस 21वीं सदी के मानव का मन कितना कलुषित, कलंकित, कितना दाग भरा है, उसका प्रदर्शन कर रहा है। हमें इससे मुक्ति लेनी होगी और यही तो आजादी के पर्व का हमारे लिए संदेश है।

अभी राष्ट्रमंडल खेल हुए हैं। भारत के खिलाड़ियों ने भारत को गौरव दिलाया है। हमारे करीब 64 खिलाड़ी जीते हैं। हमारे 64 खिलाड़ी मेडल लेकर आए हैं, लेकिन उनमें 29 बेटियाँ हैं। इस पर गर्व करें और उन बेटियों के लिए ताली बजाएं। भारत की आन-बान-शान में हमारी बेटियों का भी योगदान है, हम इसको स्वीकार करें और उन्हें भी कंधे से कंधा मिलाकर साथ लेकर चलें, तो सामाजिक जीवन में जो बुराइयाँ आई हैं, हम उन बुराइयों से मुक्ति पा सकते हैं। इसलिए भाइयों-बहनों, एक सामाजिक चरित्र के नाते, एक राष्ट्रीय चरित्र के नाते हमें उस दिशा में जाना है। भाइयों-बहनों, देश को आगे बढ़ाना है, तो विकास – एक ही रास्ता है। सुशासन – एक ही रास्ता है। देश को आगे ले जाने के लिए ये ही दो पटरियाँ हैं – गुड गवर्नेंस एंड डेवलपमेंट, उन्हीं को लेकर हम आगे चल सकते हैं। उन्हीं को लेकर चलने का इरादा लेकर हम चलना चाहते हैं। मैं जब गुड गवर्नेंस की बात करता हूँ, तब आप मुझे बताइए कि कोई प्राइवेट में नौकरी करता है, अगर आप उसको पूछोगे, तो वह कहता है कि मैं जॉब करता हूँ, लेकिन जो सरकार में नौकरी करता है, उसको पूछोगे, तो वह कहता है कि मैं सर्विस करता हूँ। दोनों कमाते हैं, लेकिन एक के लिए जॉब है और एक के लिए सर्विस है। मैं सरकारी सेवा में लगे सभी भाइयों और बहनों से प्रश्न पूछता हूँ कि क्या कहीं यह 'सर्विस' शब्द, उसने अपनी ताकत खो तो नहीं दी है, अपनी पहचान खो तो नहीं दी है? सरकारी सेवा में जुड़े हुए लोग 'जॉब' नहीं कर रहे हैं, 'सेवा' कर रहे हैं, 'सर्विस' कर रहे हैं। इसलिए इस भाव को पुनर्जीवित करना, एक राष्ट्रीय चरित्र के रूप में इसको हमें आगे ले जाना, उस दिशा में हमें आगे बढ़ना है।

भाइयों-बहनों, क्या देश के नागरिकों को राष्ट्र के कल्याण के लिए कदम उठाना चाहिए या नहीं उठाना चाहिए? आप कल्पना कीजिए, सवा सौ करोड़ देशवासी एक कदम चलें, तो यह देश सवा सौ करोड़ कदम आगे चला जाएगा। लोकतंत्र, यह सिर्फ सरकार चुनने का सीमित मायना नहीं है। लोकतंत्र में सवा सौ करोड़ नागरिक और सरकार कंधे से कंधा मिला कर देश की आशा-आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए काम करें, यह लोकतंत्र का मायना है। हमें जन-भागीदारी करनी है। पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप के साथ आगे बढ़ना है। हमें जनता को जोड़कर आगे बढ़ना है। उसे जोड़ने में आगे बढ़ने के लिए, आप मुझे बताइए कि आज हमारा किसान आत्महत्या क्यों करता है? वह साहूकार से कर्ज़ लेता है, कर्ज़ दे नहीं सकता है, मर जाता है। बेटी की शादी है, गरीब आदमी साहूकार से कर्ज़ लेता है, कर्ज़ वापस दे नहीं पाता है, जीवन भर मुसीबतों से गुजरता है। मेरे उन गरीब परिवारों की रक्षा कौन करेगा?

भाइयों-बहनों, इस आजादी के पर्व पर मैं एक योजना को आगे बढ़ाने का संकल्प करने के लिए आपके पास आया हूँ – 'प्रधानमंत्री जन-धन योजना'। इस 'प्रधानमंत्री जन-धन योजना' के माध्यम से हम देश के गरीब से गरीब लोगों को बैंक अकाउंट की सुविधा से जोड़ना चाहते हैं। आज करोड़ों-करोड़ परिवार हैं, जिनके पास मोबाइल फोन तो है, लेकिन बैंक अकाउंट नहीं हैं। यह स्थिति हमें बदलनी है। देश के आर्थिक संसाधन गरीब के काम आएँ, इसकी शुरुआत यहीं से होती है। यही तो है, जो खिड़की खोलता है। इसलिए 'प्रधानमंत्री जन-धन योजना' के तहत जो अकाउंट खुलेगा, उसको डेबिट कार्ड दिया जाएगा। उस डेबिट कार्ड के साथ हर गरीब परिवार को एक लाख रुपए का बीमा सुनिश्चित कर दिया जाएगा, ताकि अगर उसके जीवन में कोई संकट आया, तो उसके परिवारजनों को एक लाख रुपए का बीमा मिल सकता है।

भाइयों-बहनों, यह देश नौजवानों का देश है। 65 प्रतिशत देश की जनसंख्या 35 वर्ष से कम आयु की है। हमारा देश विश्व का सबसे बड़ा नौजवान देश है। क्या हमने कभी इसका फायदा उठाने के लिए सोचा है? आज दुनिया को 'स्किल्ड वर्कफोर्स' की जरूरत है। आज भारत को भी स्किल्ड वर्कफोर्स की जरूरत है। कभी-कभार हम अच्छा ड्राइवर ढूँढ़ते हैं, नहीं मिलता है, प्लम्बर ढूँढ़ते हैं, नहीं मिलता है, अच्छा

कुक चाहिए, नहीं मिलता है। नौजवान हैं, बेरोजगार हैं, लेकिन हमें जैसा चाहिए, वैसा नौजवान मिलता नहीं है। देश के विकास को यदि आगे बढ़ाना है, तो 'स्किल डेवलपमेंट' और 'स्किल्ड इंडिया' यह हमारा मिशन है। हिन्दुस्तान के कोटि-कोटि नौजवान स्किल सीखें, हुनर सीखें, उसके लिए पूरे देश में जाल होना चाहिए और घिसी-पिटी व्यवस्थाओं से नहीं, उनको वह स्किल मिले, जो उन्हें आधुनिक भारत बनाने में काम आए। वे दुनिया के किसी भी देश में जाएँ, तो उनके हुनर की सराहना हो और हम दो प्रकार के विकास को लेकर चलना चाहते हैं। मैं ऐसे नौजवानों को भी तैयार करना चाहता हूँ, जो जॉब क्रिएटर हों और जो जॉब क्रिएट करने का सामर्थ्य नहीं रखते, संयोग नहीं है, वे विश्व के किसी भी कोने में जाकर आँख में आँख मिला करके अपने बाहुबल के द्वारा, अपनी उँगलियों के हुनर के द्वारा, अपने कौशल्य के द्वारा विश्व का हृदय जीत सकें, ऐसे नौजवानों का सामर्थ्य हम तैयार करना चाहते हैं। भाइयों-बहनों, स्किल डेवलपमेंट को बहुत तेज़ी से आगे बढ़ाने का संकल्प लेकर मैं यह करना चाहता हूँ।

भाइयों-बहनों, विश्व बदल चुका है। मेरे प्यारे देशवासियों, विश्व बदल चुका है। अब भारत अलग-थलग, अकेला एक कोने में बैठकर अपना भविष्य तय नहीं कर सकता। विश्व की आर्थिक व्यवस्थाएँ बदल चुकी हैं और इसलिए हम लोगों को भी उसी रूप में सोचना होगा। सरकार ने अभी कई फैसले लिए हैं, बजट में कुछ घोषणाएँ की हैं और मैं विश्व का आह्वान करता हूँ, विश्व में पहुँचे हुए भारतवासियों का भी आह्वान करता हूँ कि आज अगर हमें नौजवानों को ज्यादा से ज्यादा रोजगार देना है, तो हमें मैन्युफैक्चरिंग सेक्टर को बढ़ावा देना पड़ेगा। इम्पोर्ट-एक्सपोर्ट की जो स्थिति है, उसमें संतुलन पैदा करना हो, तो हमें मैन्युफैक्चरिंग सेक्टर पर बल देना होगा। हमारे नौजवानों की जो विद्या है, सामर्थ्य है, उसको अगर काम में लाना है, तो हमें मैन्युफैक्चरिंग की ओर जाना पड़ेगा और इसके लिए हिन्दुस्तान की भी पूरी ताकत लगेगी, लेकिन विश्व की शक्तियों को भी हम निमंत्रण देते हैं। इसलिए मैं आज लाल किले की प्राचीर से विश्व भर में लोगों से कहना चाहता हूँ, 'कम, मेक इन इंडिया,' 'आइए, हिन्दुस्तान में निर्माण कीजिए।' दुनिया के किसी भी देश में जाकर बेचिए, लेकिन निर्माण यहाँ कीजिए, मैन्युफैक्चर यहाँ कीजिए। हमारे पास स्किल है, टेलेंट है, डिसिप्लिन है, कुछ कर गुजरने का इरादा है। हम विश्व को एक सानुकूल अवसर देना चाहते हैं कि आइए, 'कम, मेक इन इंडिया' और हम विश्व को कहें, इलेक्ट्रिकल से ले करके इलेक्ट्रॉनिक्स तक 'कम, मेक इन इंडिया', केमिकल्स से ले करके फार्मास्युटिकल्स तक 'कम, मेक इन इंडिया', ऑटोमोबाइल्स से ले करके एग्रो वैल्यू एडीशन तक 'कम, मेक इन इंडिया', पेपर हो या प्लास्टिक 'कम, मेक इन इंडिया', सैटेलाइट हो या सबमेरीन 'कम, मेक इन इंडिया'। ताकत है हमारे देश में! आइए, मैं निमंत्रण देता हूं।

भाइयों-बहनों, मैं देश के नौजवानों का भी एक आवाहन करना चाहता हूं, विशेष करके उद्योग क्षेत्र में लगे हुए छोटे-छोटे लोगों का आवाहन करना चाहता हूं। मैं देश के टेक्निकल एजुकेशन से जुड़े हुए नौजवानों का आवाहन करना चाहता हूं। जैसे मैं विश्व से कहता हूं 'कम, मेक इन इंडिया', मैं देश के नौजवानों को कहता हूं – हमारा सपना होना चाहिए कि दुनिया के हर कोने में यह बात पहुंचनी चाहिए, 'मेड इन इंडिया'। यह हमारा सपना होना चाहिए। क्या मेरे देश के नौजवानों को देश-सेवा करने के लिए सिर्फ भगत सिंह की तरह फांसी पर लटकना ही अनिवार्य है? भाइयों-बहनों, लालबहादुर शास्त्री जी ने 'जय जवान, जय किसान' एक साथ मंत्र दिया था। जवान, जो सीमा पर अपना सिर दे देता है, उसी की बराबरी में 'जय जवान' कहा था। क्यों? क्योंकि अन्न के भंडार भर करके मेरा किसान भारत मां की उतनी ही सेवा करता है, जैसे जवान भारत मां की रक्षा करता है। यह भी देश सेवा है। अन्न के भंडार भरना, यह भी किसान की सबसे बड़ी देश सेवा है और तभी तो लालबहादुर शास्त्री ने 'जय जवान, जय किसान' कहा था।

भाइयों-बहनों, मैं नौजवानों से कहना चाहता हूं, आपके रहते हुए छोटी-मोटी चीज़ें हमें दुनिया से इम्पोर्ट क्यों करनी पड़ें? क्या मेरे देश के नौजवान यह तय कर सकते हैं, वे जरा रिसर्च करें, ढूंढ़ें कि भारत कितने प्रकार की चीजों को इम्पोर्ट करता है और वे फैसला करें कि मैं अपने छोटे-छोटे काम के द्वारा, उद्योग के द्वारा, मेरा छोटा ही कारखाना क्यों न हो, लेकिन मेरे देश में इम्पोर्ट होने वाली कम से कम एक चीज मैं ऐसी बनाऊंगा कि मेरे देश को कभी इम्पोर्ट न करना पड़े। इतना ही नहीं, मेरा देश एक्सपोर्ट करने की स्थिति में आए। अगर हिन्दुस्तान के लाखों नौजवान एक-एक आइटम ले करके बैठ जाएं, तो भारत दुनिया में एक्सपोर्ट करने वाला देश बन सकता है और इसलिए मेरा आग्रह है, नौजवानों से विशेष करके, छोटे-मोटे उद्योगकारों से – दो बातों में कॉम्प्रोमाइज न करें, एक 'जीरो डिफेक्ट', दूसरा जीरो इफेक्ट। हम वह मैन्युफैक्चरिंग करें, जिसमें जीरो डिफेक्ट हो, ताकि दुनिया के बाजार से वह कभी वापस न आए और हम वह मैन्युफैक्चरिंग करें, जिससे जीरो इफेक्ट हो, पर्यावरण पर इसका कोई नेगेटिव इफेक्ट न हो। जीरो डिफेक्ट, जीरो इफेक्ट के साथ मैन्युफैक्चरिंग सेक्टर का सपना ले करके अगर हम आगे चलते हैं, तो मुझे विश्वास है, मेरे भाइयों-बहनों, कि जिस काम को ले करके हम चल रहे हैं, उस काम को पूरा करेंगे।

भाइयों-बहनों, पूरे विश्व में हमारे देश के नौजवानों ने भारत की पहचान को बदल दिया है। विश्व भारत को क्या जानता था? ज्यादा नहीं, अभी 25-30 साल पहले तक दुनिया के कई कोने ऐसे थे जो हिन्दुस्तान के लिए यही सोचते थे कि ये तो 'सपेरों का देश' है। ये सांप का खेल करने वाला देश है, काले जादू वाला देश है। भारत की सच्ची पहचान दुनिया तक पहुंची नहीं थी, लेकिन भाइयों-बहनों, हमारे 20-22-23 साल के नौजवान, जिन्होंने कम्प्यूटर पर अंगुलियां घुमाते-घुमाते दुनिया को चकित कर दिया। विश्व में भारत की एक नई पहचान बनाने का रास्ता हमारे आई.टी. प्रोफेशन के नौजवानों ने कर दिया। अगर यह ताकत हमारे देश में है, तो क्या देश के लिए हम कुछ सोच सकते हैं? इसलिए हमारा सपना 'डिजिटल इंडिया' है। जब मैं 'डिजिटल इंडिया' कहता हूं, तब ये बड़े लोगों की बात नहीं है, यह गरीब के लिए है। अगर ब्रॉडबेंड कनेक्टिविटी से हिन्दुस्तान के गांव जुड़ते हैं और गांव के आखिरी छोर के स्कूल में अगर हम लॉंग डिस्टेंस एजुकेशन दे सकते हैं, तो आप कल्पना कर सकते हैं कि हमारे उन गांवों के बच्चों को कितनी अच्छी शिक्षा मिलेगी। जहां डाक्टर नहीं पहुंच पाते, अगर हम टेलिमेडिसिन का नेटवर्क खड़ा करें, तो वहां पर बैठे हुए गरीब व्यक्ति को भी, किस प्रकार की दवाई की दिशा में जाना है, उसका स्पष्ट मार्गदर्शन मिल सकता है। सामान्य मानव की रोजमर्रा की चीजें – आपके हाथ में मोबाइल फोन है, हिन्दुस्तान के नागरिकों के पास बहुत बड़ी तादाद में मोबाइल कनेक्टिविटी है, लेकिन क्या इस मोबाइल गवर्नेंस की तरफ हम जा सकते हैं? अपने मोबाइल से गरीब आदमी बैंक अकाउंट ऑपरेट करे, वह सरकार से अपनी चीजें मांग सके, वह अपनी अर्जी पेश करे, अपना सारा कारोबार चलते-चलते मोबाइल गवर्नेंस के द्वारा कर सके और यह अगर करना है, तो हमें 'डिजिटल इंडिया' की ओर जाना है। और 'डिजिटल इंडिया' की तरफ जाना है, तो इसके साथ हमारा यह भी सपना है, हम आज बहुत बड़ी मात्रा में विदेशों से इलेक्ट्रॉनिक गुड्ज इम्पोर्ट करते हैं। आपको हैरानी होगी भाइयों-बहनों, ये टीवी, ये मोबाइल फोन, ये आईपैड, ये जो इलेक्ट्रॉनिक गुड्ज हम लाते हैं, देश के लिए पेट्रोलियम पदार्थों को लाना अनिवार्य है, डीजल और पेट्रोल लाते हैं, तेल लाते हैं। उसके बाद इम्पोर्ट में दूसरे नम्बर पर हमारी इलैक्ट्रॉनिक गुड्ज हैं। अगर हम 'डिजिटल इंडिया' का सपना ले करके इलेक्ट्रॉनिक गुड्ज के मैन्युफैक्चर के लिए चल पड़ें और हम कम से कम स्वनिर्भर बन जाएं, तो देश की तिजोरी को कितना बड़ा लाभ हो सकता है और इसलिए हम इस 'डिजिटल इंडिया' को ले करके जब आगे चलना चाहते हैं, तब ई-गवर्नेंस। ई-गवर्नेंस ईजी गवर्नेंस है, इफेक्टिव गवर्नेंस है और इकोनॉमिकल गवर्नेंस है। ई-गवर्नेंस के माध्यम से गुड गवर्नेंस की ओर जाने का रास्ता है। एक जमाना था, कहा जाता था कि रेलवे देश को जोड़ती है । ऐसा कहा जाता था। मैं कहता हूं कि आज आईटी देश के जन-जन को जोड़ने की ताकत रखती है और इसलिए हम 'डिजिटल इंडिया' के माध्यम से आईटी के धरातल पर यूनिटी के मंत्र को साकार करना चाहते हैं।

भाइयों-बहनों, अगर हम इन चीजों को ले करके चलते हैं, तो मुझे विश्वास है कि 'डिजिटल इंडिया' विश्व की बराबरी करने की एक ताकत के साथ खड़ा हो जाएगा, हमारे नौजवानों में वह सामर्थ्य है, यह उनको वह अवसर दे रहा है।

भाइयों-बहनों, हम टूरिज्म को बढ़ावा देना चाहते हैं। टूरिज्म से गरीब से गरीब व्यक्ति को रोजगार मिलता है। चना बेचने वाला भी कमाता है, ऑटो-रिक्शा वाला भी कमाता है, पकौड़े बेचने वाला भी कमाता है और एक चाय बेचने वाला भी कमाता है। जब चाय बेचने वाले की बात आती है, तो मुझे जरा अपनापन महसूस होता है। टूरिज्म के कारण गरीब से गरीब व्यक्ति को रोजगार मिलता है। लेकिन टूरिज्म के अंदर बढ़ावा देने में भी और एक राष्ट्रीय चरित्र के रूप में भी हमारे सामने सबसे बड़ी रुकावट है हमारे चारों तरफ दिखाई दे रही गंदगी । क्या आजादी के बाद, आजादी के इतने सालों के बाद, जब हम 21 वीं सदी के डेढ़ दशक के दरवाजे पर खड़े हैं, तब क्या अब भी हम गंदगी में जीना चाहते हैं? मैंने यहाँ सरकार में आकर पहला काम सफाई का शुरू किया है। लोगों को आश्चर्य हुआ कि क्या यह प्रधानमंत्री का काम है? लोगों को लगता होगा कि यह प्रधानमंत्री के लिए छोटा काम होगा, मेरे लिए बहुत बड़ा काम है। सफाई करना बहुत बड़ा काम है। क्या हमारा देश स्वच्छ नहीं हो सकता है? अगर सवा सौ करोड़ देशवासी तय कर लें कि मैं कभी गंदगी नहीं करूंगा तो दुनिया की कौन-सी ताकत है, जो हमारे शहर, गाँव को आकर गंदा कर सके? क्या हम इतना-सा संकल्प नहीं कर सकते हैं?

भाइयों-बहनों, 2019 में महात्मा गाँधी की 150वीं जयंती आ रही है। महात्मा गांधी की 150वीं जयंती हम कैसे मनाएँ? महात्मा गाँधी, जिन्होंने हमें आजादी दी, जिन्होंने इतने बड़े देश को दुनिया के अंदर इतना सम्मान दिलाया, उन महात्मा गाँधी को हम क्या दें? भाइयों-बहनों, महात्मा गाँधी को सबसे प्रिय थी – सफाई, स्वच्छता। क्या हम तय करें कि सन् 2019 में जब हम महात्मा गाँधी की 150वीं जयंती मनाएँगे, तो हमारा गाँव, हमारा शहर, हमारी गली, हमारा मोहल्ला, हमारे स्कूल, हमारे मंदिर, हमारे अस्पताल, सभी क्षेत्रों में हम गंदगी का नामोनिशान नहीं रहने देंगे? यह सरकार से नहीं होता है, जन-भागीदारी से होता है, इसलिए यह काम हम सबको मिलकर करना है।

भाइयों-बहनों, हम इक्कीसवीं सदी में जी रहे हैं। क्या कभी हमारे मन को पीड़ा हुई कि आज भी हमारी माताओं और बहनों को खुले में शौच के लिए जाना पड़ता है? डिग्निटी ऑफ विमेन, क्या यह हम सबका दायित्व नहीं है? बेचारी गाँव की माँ-बहनें अँधेरे का इंतजार करती हैं, जब तक अँधेरा नहीं आता है, वे शौच के लिए नहीं जा पाती हैं। उसके शरीर को कितनी पीड़ा होती होगी, कितनी बीमारियों की जड़ें उसमें से शुरू होती होंगी! क्या हमारी माँ-बहनों की इज्जत के लिए हम कम-से-कम शौचालय का प्रबन्ध नहीं कर सकते हैं? भाइयों-बहनों, किसी को लगेगा कि 15 अगस्त का इतना बड़ा महोत्सव बहुत बड़ी-बड़ी बातें करने का अवसर होता है। भाइयों-बहनों, बड़ी बातों का महत्व है, घोषणाओं का भी महत्त्व है, लेकिन कभी-कभी घोषणाएँ जगाती हैं और जब घोषणाएँ परिपूर्ण नहीं होती हैं, तब समाज निराशा की गर्त में डूब जाता है। इसलिए हम उन बातों के ही कहने के पक्षधर हैं, जिनको हम अपने देखते-देखते पूरा कर पाएँ। भाइयों-बहनों, इसलिए मैं कहता हूँ कि आपको लगता होगा कि क्या लाल किले से सफाई की बात करना, लाल किले से टॉयलेट की बात बताना, यह कैसा प्रधानमंत्री है? भाइयों-बहनों, मैं नहीं जानता हूँ कि मेरी कैसी आलोचना होगी, इसे कैसे लिया जाएगा, लेकिन मैं मन से मानता हूँ। मैं गरीब परिवार से आया हूँ, मैंने गरीबी देखी है और गरीब को इज्जत मिले, इसकी शुरूआत यहीं से होती है। इसलिए 'स्वच्छ भारत' का एक अभियान इसी 2 अक्टूबर से मुझे आरम्भ करना है और चार साल के भीतर-भीतर हम इस काम को आगे बढ़ाना चाहते हैं। एक काम तो मैं आज ही शुरू करना चाहता हूँ और वह है- हिन्दुस्तान के सभी स्कूलों में टॉयलेट हो, बच्चियों के लिए अलग टॉयलेट हो, तभी तो हमारी बच्चियाँ स्कूल छोड़ कर भागेंगी नहीं। हमारे सांसद जो एमपी लैड फंड का उपयोग कर रहे हैं, मैं उनसे आग्रह करता हूँ कि एक साल के लिए आपका धन स्कूलों में टॉयलेट बनाने के लिए खर्च कीजिए। सरकार अपना बजट टॉयलेट बनाने में खर्च करे। मैं देश के कॉरपोरेट सेक्टर्स का भी आह्वान करना चाहता हूँ कि कॉरपोरेट सोशल रिस्पांसिबिलिटी के तहत आप जो खर्च कर रहे हैं, उसमें आप स्कूलों में टॉयलेट बनाने को प्राथमिकता दीजिए। सरकार के साथ मिलकर, राज्य सरकारों के साथ मिलकर एक साल के भीतर-भीतर यह काम हो जाए और जब हम अगले 15 अगस्त को यहाँ खड़े हों, तब इस विश्वास के साथ खड़े हों कि अब हिन्दुस्तान का ऐसा कोई स्कूल नहीं है, जहाँ बच्चे एवं बच्चियों के लिए अलग टॉयलेट का निर्माण होना बाकी है।

भाइयों-बहनों, अगर हम सपने लेकर चलते हैं तो सपने पूरे भी होते हैं। मैं आज एक विशेष बात और कहना चाहता हूँ। भाइयों-बहनों, देशहित की चर्चा करना और देशहित के विचारों को देना, इसका अपना महत्त्व है। हमारे सांसद, वे कुछ करना भी चाहते हैं, लेकिन उन्हें अवसर नहीं मिलता है। वे अपनी बात बता सकते हैं, सरकार को चिट्ठी लिख सकते हैं, आंदोलन कर सकते हैं, मेमोरेंडम दे सकते हैं, लेकिन फिर भी, खुद को कुछ करने का अवसर मिलता नहीं है। मैं एक नए विचार को लेकर आज आपके पास आया हूं। हमारे देश में प्रधानमंत्री के नाम पर कई योजनाएं चल रही हैं, कई नेताओं के नाम पर ढेर सारी योजनाएं चल रही हैं, लेकिन मैं आज सांसद के नाम पर एक योजना घोषित करता हूं – **'सांसद आदर्श ग्राम योजना'**। हम कुछ पैरामीटर्स तय करेंगे और मैं सांसदों से आग्रह करता हूं कि वे अपने इलाके में तीन हजार से पांच हजार के बीच का कोई भी गांव पसंद कर लें और कुछ पैरामीटर्स तय हों – वहां के स्थल, काल, परिस्थिति के अनुसार, वहां की शिक्षा, वहां का स्वास्थ्य, वहां की सफाई, वहां के गांव का वह माहौल, गांव में ग्रीनरी, गांव का मेलजोल, कई पैरामीटर्स हम तय करेंगे और हर सांसद 2016 तक अपने इलाके में एक गांव को आदर्श गांव बनाए। इतना तो कर सकते हैं न भाई! करना चाहिए न! देश बनाना है तो गांव से शुरू करें। एक आदर्श गांव बनाएं और मैं 2016 का टाइम इसलिए देता हूं कि नयी योजना है, लागू करने में, योजना बनाने में कभी समय लगता है और 2016 के बाद, जब 2019 में वह चुनाव के लिए जाए, उसके पहले और दो गांवों को करे और 2019 के बाद हर सांसद, 5 साल के कार्यकाल में कम से कम 5 आदर्श गांव अपने इलाके में बनाए। जो शहरी क्षेत्र के एम.पीज हैं, उनसे भी मेरा आवाह्न है कि वे भी एक गांव पसंद करें। जो राज्य सभा के एम.पीज हैं, उनसे भी मेरा आग्रह है, वे भी एक गांव पसंद करें। हिन्दुस्तान के हर जिले में, अगर हम एक आदर्श गांव बनाकर देते हैं, तो सभी अगल-बगल के गांवों को खुद उस दिशा में जाने का मन कर जाएगा। एक मॉडल गांव बना करके देखें, व्यवस्थाओं से भरा हुआ गांव बनाकर देखें। 11 अक्टूबर को जयप्रकाश नारायण जी की जन्म जयंती है। मैं 11 अक्टूबर को जयप्रकाश नारायण जी की जन्म जयंती पर एक 'सांसद आदर्श ग्राम योजना' का कम्प्लीट ब्ल्यूप्रिंट सभी सांसदों के सामने रख दूंगा, सभी राज्य सरकारों के सामने रख दूंगा और मैं राज्य सरकारों से भी आग्रह करता हूं कि आप भी इस योजना के माध्यम से, अपने राज्य में जो अनुकूलता हो, वैसे सभी विधायकों के लिए एक आदर्श ग्राम बनाने का संकल्प करिए। आप कल्पना कर सकते हैं, देश के सभी विधायक एक आदर्श ग्राम बनाएं, सभी सांसद एक आदर्श ग्राम बनाएं। देखते ही देखते हिन्दुस्तान के हर ब्लॉक में एक

आदर्श ग्राम तैयार हो जाएगा, जो हमें गांव की सुख-सुविधा में बदलाव लाने के लिए प्रेरणा दे सकता है, हमें नई दिशा दे सकता है और इसलिए इस 'सांसद आदर्श ग्राम योजना' के तहत हम आगे बढ़ना चाहते हैं।

भाइयों-बहनों, जब से हमारी सरकार बनी है, तब से अखबारों में, टी.वी. में एक चर्चा चल रही है कि प्लानिंग कमीशन का क्या होगा? मैं समझता हूं कि जिस समय प्लानिंग कमीशन का जन्म हुआ, योजना आयोग का जन्म हुआ, उस समय की जो स्थितियाँ थीं, उस समय की जो आवश्यकताएँ थीं, उनके आधार पर उसकी रचना की गई। इन पिछले वर्षों में योजना आयोग ने अपने तरीके से राष्ट्र के विकास में उचित योगदान दिया है। मैं इसका आदर करता हूं, गौरव करता हूं, सम्मान करता हूं, सत्कार करता हूं, लेकिन अब देश की अंदरूनी स्थिति भी बदली हुई है, वैश्विक परिवेश भी बदला हुआ है, आर्थिक गतिविधि का केंद्र सरकारें नहीं रही हैं, उसका दायरा बहुत फैल चुका है। राज्य सरकारें विकास के केन्द्र में आ रही हैं और मैं इसको अच्छी निशानी मानता हूँ। अगर भारत को आगे ले जाना है, तो यह राज्यों को आगे ले जाकर ही होने वाला है। भारत के फेडेरल स्ट्रक्चर की अहमियत पिछले 60 साल में जितनी थी, उससे ज्यादा आज के युग में है। हमारे संघीय ढाँचे को मजबूत बनाना, हमारे संघीय ढाँचे को चेतनवंत बनाना, हमारे संघीय ढाँचे को विकास की धरोहर के रूप में काम लेना, मुख्यमंत्री और प्रधानमंत्री की एक टीम का फॉर्मेशन हो, केन्द्र और राज्य की एक टीम हो, एक टीम बनकर आगे चले, तो इस काम को अब प्लानिंग कमीशन के नए रंग-रूप से सोचना पड़ेगा। इसलिए लाल किले की इस प्राचीर से एक बहुत बड़ी चली आ रही पुरानी व्यवस्था में उसका कायाकल्प भी करने की जरूरत है, उसमें बहुत बदलाव करने की आवश्यकता है। कभी-कभी पुराने घर की रिपेयरिंग में खर्चा ज्यादा होता है लेकिन संतोष नहीं होता है। फिर मन करता है, अच्छा है, एक नया ही घर बना लें और इसलिए बहुत ही कम समय के भीतर योजना आयोग के स्थान पर, एक क्रिएटिव थिंकिंग के साथ राष्ट्र को आगे ले जाने की दिशा, पब्लिक-प्राइवेट पार्टनरशिप की दिशा, संसाधनों का ऑप्टिमम युटिलाइजेशन, प्राकृतिक संसाधनों का ऑप्टिमम युटिलाइजेशन, देश की युवा शक्ति के सामर्थ्य का उपयोग, राज्य सरकारों की आगे बढ़ने की इच्छाओं को बल देना, राज्य सरकारों को ताकतवर बनाना, संघीय ढाँचे को ताकतवर बनाना, एक ऐसे नये रंग-रूप के साथ, नये शरीर, नयी आत्मा के साथ, नयी सोच के साथ, नयी दिशा के साथ, नये विश्वास के साथ, एक नये इंस्टीट्यूशन का हम निर्माण करेंगे और बहुत ही जल्द योजना आयोग की जगह पर यह नया इंस्टीट्यूट काम करे, उस दिशा में हम आगे बढ़ने वाले हैं।

भाइयों-बहनों, आज 15 अगस्त महर्षि अरविंद का भी जन्म जयंती का पर्व है। महर्षि अरविंद ने एक क्रांतिकारी से निकल कर योग गुरु की अवस्था को प्राप्त किया था। उन्होंने भारत के भाग्य के लिए कहा था कि 'मुझे विश्वास है, भारत की दैविक शक्ति, भारत की आध्यात्मिक विरासत विश्व कल्याण के लिए अहम भूमिका निभाएगी'। इस प्रकार के भाव महर्षि अरविन्द ने व्यक्त किए थे। मेरी महापुरुषों की बातों में बड़ी श्रद्धा है। मेरी त्यागी, तपस्वी ऋषियों और मुनियों की बातों में बड़ी श्रद्धा है और इसलिए मुझे आज लाल किले की प्राचीर से स्वामी विवेकानन्द जी के वे शब्द याद आ रहे हैं जब स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा था, 'मैं मेरी आँखों के सामने देख रहा हूँ।' विवेकानन्द जी के शब्द थे – 'मैं मेरी आँखों के सामने देख रहा हूँ कि फिर एक बार मेरी भारतमाता जाग उठी है, मेरी भारतमाता जगद्गुरु के स्थान पर विराजमान होगी, हर भारतीय मानवता के कल्याण के काम आएगा, भारत की यह विरासत विश्व के कल्याण के लिए काम आएगी।' ये शब्द स्वामी विवेकानन्द जी ने अपने तरीके से कहे थे। भाइयों-बहनों, विवेकानन्द जी के शब्द कभी असत्य नहीं हो सकते। स्वामी विवेकानन्द जी के शब्द, भारत को जगद्गुरु देखने का उनका सपना, उनकी दीर्घदृष्टि, उस सपने को पूरा करना हम लोगों का कर्तव्य है। दुनिया का यह सामर्थ्यवान देश, प्रकृति से हरा-भरा देश, नौजवानों का देश, आने वाले दिनों में विश्व के लिए बहुत कुछ कर सकता है।

भाइयों-बहनों, लोग विदेश की नीतियों के संबंध में चर्चा करते हैं। मैं यह साफ मानता हूँ कि भारत की विदेश नीति के कई आयाम हो सकते हैं, लेकिन एक महत्त्वपूर्ण बात है, जिस पर मैं अपना ध्यान केंद्रित करना चाहता हूं कि हम आजादी की जैसे लड़ाई लड़े, मिल-जुलकर लड़े थे, तब तो हम अलग नहीं थे, हम साथ-साथ थे। कौन सी सरकार हमारे साथ थी? कौन से शस्त्र हमारे पास थे? एक गांधी थे, सरदार थे और लक्षावती स्वातंत्र्य सेनानी थे और इतनी बड़ी सल्तनत थी। उस सल्तनत के सामने हम आजादी की जंग जीते या नहीं जीते? विदेशी ताकतों को परास्त किया या नहीं किया? भारत छोड़ने के लिए मजबूर किया या नहीं किया? हमीं तो थे, हमारे ही तो पूर्वज थे, जिन्होंने यह सामर्थ्य दिखाई थी। समय की मांग है, सत्ता के बिना, शासन के बिना, शस्त्र के बिना, साधनों के बिना भी इतनी बड़ी सल्तनत को हटाने का काम अगर हिंदुस्तान की जनता कर सकती है, तो भाइयों-बहनों, हम क्या गरीबी को हटा नहीं सकते? क्या हम गरीबी को परास्त नहीं कर सकते हैं? क्या हम गरीबी के खिलाफ लड़ाई जीत नहीं सकते हैं? मेरे सवा सौ करोड़ प्यारे देशवासियो, आओ! आओ, हम संकल्प करें, हम गरीबी को परास्त करें, हम विजयश्री को प्राप्त करें।

भारत से गरीबी का उन्मूलन हो, उन सपनों को लेकर हम चलें और पड़ोसी देशों के पास भी यही तो समस्या है! क्यों न हम सार्क देशों के सभी साथी दोस्त मिल करके गरीबी के खिलाफ लड़ाई लड़ने की योजना बनाएं? हम मिल करके लड़ाई लड़ें, गरीबी को परास्त करें। एक बार देखें तो सही, मरने-मारने की दुनिया को छोड़ करके जीवित रहने का आनंद क्या होता है! यही तो भूमि है, जहां सिद्धार्थ के जीवन की घटना घटी थी। एक पंछी को एक भाई ने तीर मार दिया और एक दूसरे भाई ने तीर निकाल करके बचा लिया। मां के पास गए – पंछी किसका, हंस किसका? मां से पूछा, मारने वाले का या बचाने वाले का? मां ने कहा, बचाने वाले का। मारने वाले से बचाने वाले की ताकत ज्यादा होती है और वही तो आगे जा करके बुद्ध बन जाता है। इसलिए, मैं पड़ोस के देशों से मिल-जुल करके गरीबी के खिलाफ लड़ाई को लड़ने के लिए सहयोग चाहता हूं, सहयोग करना चाहता हूं और हम मिल करके, सार्क देश मिल करके, हम दुनिया में अपनी अहमियत खड़ी कर सकते हैं, हम दुनिया में एक ताकत बनकर उभर सकते हैं। आवश्यकता है, हम मिल-जुल करके चलें, गरीबी से लड़ाई जीतने का सपना ले करके चलें, कंधे से कंधा मिला करके चलें। मैं भूटान गया, नेपाल गया, सार्क देशों के सभी महानुभाव शपथ समारोह में आए, एक बहुत अच्छी शुभ शुरुआत हुई है। तो निश्चित रूप से अच्छे परिणाम मिलेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है और देश और दुनिया में भारत की यह सोच, हम देशवासियों का भला करना चाहते हैं और विश्व के कल्याण में काम आ सकें, हिन्दुस्तान ऐसा हाथ फहराना चाहता है। इन सपनों को ले करके, पूरा करके, आगे बढ़ने का हम प्रयास कर रहे हैं।

भाइयों-बहनों, आज 15 अगस्त को हम देश के लिए कुछ न कुछ करने का संकल्प ले करके चलेंगे। हम देश के लिए काम आएं, देश को आगे बढ़ाने का संकल्प लेकर चलेंगे और मैं आपको विश्वास दिलाता हूं भाइयों-बहनों, मैं मेरी सरकार के साथियों को भी कहता हूं, अगर आप 12 घंटे काम करोगे, तो मैं 13 घंटे करूंगा। अगर आप 14 घंटे काम करोगे, तो मैं 15 घंटे करूंगा। क्यों? क्योंकि मैं प्रधानमंत्री नहीं, प्रधान सेवक के रूप में आपके बीच आया हूं। मैं शासक के रूप में नहीं, सेवक के रूप में सरकार लेकर आया हूं। भाइयों-बहनों, मैं विश्वास दिलाता हूं कि इस देश की एक नियति है, विश्व कल्याण की नियति है, यह विवेकानन्द जी ने कहा था। इस नियति को पूर्ण करने के लिए भारत का जन्म हुआ है, इस हिन्दुस्तान का जन्म हुआ है। इसकी परिपूर्ति के लिए सवा सौ करोड़ देशवासियों को तन-मन से मिलकर राष्ट्र के कल्याण के लिए आगे बढ़ना है।

मैं फिर एक बार देश के सुरक्षा बलों, देश के अर्द्ध सैनिक बलों, देश की सभी सिक्योरिटी फोर्सेज को, मां-भारती की रक्षा के लिए, उनकी तपस्या, त्याग, उनके बलिदान पर गौरव करता हूं। मैं देशवासियों को कहता हूं, 'राष्ट्र्याम् जाग्रयाम् वयम्', 'Eternal vigilance is the price of liberty'. हम जागते रहें, सेना जाग रही है, हम भी जागते रहें और देश नए कदम की ओर आगे बढ़ता रहे, इसी एक संकल्प के साथ हमें आगे बढ़ना है। सभी मेरे साथ पूरी ताकत से बोलिए -

भारत माता की जय, भारत माता की जय, भारत माता की जय।

जय हिन्द, जय हिन्द, जय हिन्द!

वंदे मातरम, वंदे मातरम, वंदे मातरम! ■

डॉ॰ अम्बेडकर की परिकल्पना का स्वतंत्र भारत

■ डॉ॰ आर.एम.एस. विजयी

भारत, विकास के पक्षधर अभिनव नेतृत्व और गठबंधन के अन्तर्गत देश को सुदृढ और समृद्ध बनाने के बुलन्द इरादों के साथ आजादी की 67 वीं वर्षगांठ मना चुका है। लेकिन सदियों से शोषित वर्गों की सामाजिक और आर्थिक स्थितियों में कितना परिवर्तन होगा, यह अभी भविष्य के गर्त में है। बाबासाहेब डॉ॰ अम्बेडकर ने जीवन भर सामाजिक न्याय, समानता, बंधुता के पक्ष में और हर तरह के शोषण के खिलाफ संघर्ष किया । उनके जीवन का यह उद्देश्य था कि स्वतन्त्रता के साथ - साथ इस महान देश की एकता भी सुरक्षित रखी जाए। उन्होंने केवल सैद्धान्तिक एकता पर ही बल नहीं दिया, बल्कि व्यावहारिक एकता के भी वे पक्षधर थे। देश में विभिन्नता होते हुए भी उन्होंने राष्ट्रीय एकता पर बल दिया उनके अनुसार यदि स्थायी एकता स्थापित करनी है, तो यह भाई चारे की भावना पर आधारित होनी चाहिए। इसलिए उन्होंने समता, बंधुता सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय से ओत-प्रोत मजबूत भारत की परिकल्पना की तथा दुनिया के बेहतरीन संविधान में इन सबको प्रतिष्ठापित किया। उनका मानवतावादी, प्रखर राष्ट्रवादी और समतावादी चिन्तन तथा दर्शन आज की विकट परिस्थितियों में भी मार्गदर्शक है।

डॉ॰ अम्बेडकर एक निर्भीक तथा स्पष्टवादी व्यक्ति थे। उनमें अपार धैर्य, कर्मठता, सहिष्णुता, सरलता और विनय शीलता कूट-कूटकर भरी थी। उनके जीवन का यह मूल प्रश्न बन गया था कि समाज में दु:ख और शोषण क्यों है और उसे किस प्रकार दूर किया जाए, यही तो उनके जीवन का मूलाधार बनकर बराबर उद्वेलित होता रहा और इसे वे राष्ट्रीय एकता और सामाजिक सुदृढ़ता को ठोस आधार मानते थे। उन्हें अपने जीवन में सामाजिक वर्ण व्यवस्था के कारण अनेक बार अपमान सहन करना पड़ा, स्वयं भुक्तभोगी होने के कारण उन्होंने दलितों के उत्थान का बीड़ा उठाया। यहां तक कि उन्होंने दलितों के लिए इतना कुछ किया कि अन्य व्यक्तियों का दलित जनों के हितार्थ किया गया कार्य कम महत्त्व का प्रतीत होने लगा। यह हकीकत है कि उन्होंने जितना किया, उसका कोई सानी नहीं।

बाबासाहेब का स्पष्ट मानना था कि दलितों की उन्नति का उत्तम मार्ग उच्च शिक्षा, रोजगार और जीविकापार्जन के उत्तम साधनों में निहित हैं यदि एकबार दलित व्यक्ति का सामाजिक स्तर अच्छी तरह से प्रतिष्ठित हो जाए तो उनका सम्मान बढ़ेगा तथा सवर्णों के दृष्टिकोण में भी निश्चित परिवर्तन आएगा। जैसा उन्होंने सोचा था, उसके अनुसार दलितों के जीवन में बदलाव तो आया लेकिन वह थोड़े से हिस्से तक सीमित रहा और अधिकांश दलित आबादी अपमान और बदहाली का जीवन जीने के लिए अभिशप्त है। इसके सीधे मायने ये हैं कि उनकी आशा के अनुरूप उन्नति नहीं हो पाई और इसीलिए सवर्णों का दृष्टिकोण भी नहीं बदला, जातीय आधार पर उत्पीड़न की घटनाएं इसकी साक्षी हैं।

स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए जिम्मेदारियों का अहसास कराते हुए

डॉ॰ अम्बेडकर कहते हैं- स्वतन्त्रता एक आनन्द दायक जीवन है, इसमें कोई संदेह नहीं। परन्तु इस स्वतन्त्रता ने आपके ऊपर जिम्मेदारियां भी डाली हैं, हमें यह नहीं भूलना चाहिए। कोई भी संकट आने पर पहले हम उसकी जिम्मेदारी अंग्रेजों पर डाल देते थे। स्वतन्त्रता ने इस स्थिति को अब पूर्णत: समाप्त कर दिया है। अब भविष्य में यदि कुछ गलतियां हुई तो उसकी जिम्मेदारी हम दूसरों पर नहीं डाल सकते। वरना हमें ही अब उसे स्वीकार करना होगा। इस प्रकार की अनिष्ट घटनाएं होती रही तो देश पर संकट के बादल छा जाएंगे। परिस्थितियां उत्तरोत्तर तेजी से बदल रही हैं। अन्य देशों के लोग व हमारे यहां के लोग भी नई-नई विचार-प्रणालियों का अनुमान कर रहे हैं। सत्ताधारियों के द्वारा चलाए जा रहे शासन को वे अस्वीकार कर रहे हैं। अब वे जनता के लिए चलाए जा रहे राज्य को स्वीकार करने के लिए उत्सुक हैं। वह राज्य जनता का है अब जनता द्वारा चलाया जा रहा है, इसमें उन्हें बहुत रूचि नहीं है। जनता द्वारा चलाए जा रहे या

जनता के लिए चले जा रहे राज्य की सैद्धांतिक मूर्ति को हमने जिस संविधान मंदिर में प्रतिष्ठापित किया है। वह मंदिर यदि हमें पवित्र वातावरण में सुरक्षित रखना है तो हमारे भावी मार्ग में कौन-कौन सी अनिष्ट घटनाओं की शिलाएं मार्ग अवरूद्ध किए हैं, यह समझने में हमें विलम्ब नहीं करना चाहिए। जनता द्वारा चलाए गए राज्य से जनता के लिए चलाया गया राज्य अधिक अच्छा है। इस जागृति की जनता में हानि नहीं होनी चाहिए। यह अवरोध अपने मार्ग से हटाने में हमें इंच मात्र भी आलस्य नहीं करना चाहिए। देश सेवा करने का यही एकमात्र मार्ग है, इसके अलावा दूसरा कोई मार्ग मुझे दिखाई नहीं देता।

जीवन के अन्तिम पड़ाव पर .....चल की ओर बढ़ते हुए अम्बेडकर भवन के परिसर में समाज के प्रति समर्पित और अपने प्रति श्रद्धावान जिम्मेदार लोगों के मुखातिर जो मालिक शब्द व्यक्त किए थे, उसमें उनकी गहन पीड़ा छुपी थी और बेहतर स्थिति में जीने वाले लोगों द्वारा अपने भाइयों की यथायोग्य सहायता करने की प्रेरणा भी। उन्होंने कहा था- "मेरे भाइयों, मैं आजकल अपने लोगों के लिए अकेला ही लड़ता हूं। मैं तुम्हारे लिए शिक्षा के सब द्वार खुलवाने तथा नौकरियों में कुछ अधिकार प्राप्त करने में सफल हुआ हूं। कोई एक व्यक्ति कब तक किसी समाज की सेवा करता रह सकता है मेरा शरीर अब बहुत कमजोर हो चुका है। अब तुम्हें स्वयं को अपने पैरों पर खड़ा होना होगा। इसलिए मैं चाहता हूं कि तुम रोजगार के साथ अपने भाइयों को, खासकर पिछड़े भाइयों को अपने जैसे बनाने वाले प्रयत्न जारी रखो। काश: शिक्षा और रोजगार में आरक्षण के आधार पर समर्थ हुए शिक्षित वर्ग के भाईयों ने उनकी इस नसीहत पर ध्यान दिया होता तो काफी हद तक सामाजिक और आर्थिक बराबरी आ गई होती और सही मायने में समता, बंधुता, भ्रातृत्व और सामाजिक न्याय से ओत-प्रोत, उनकी परिकल्पना का समृद्ध और सुदृढ़ भारत दुनिया में अपनी गौरवशाली स्थिति कायम करने में सक्षम होता।

डॉ॰ अम्बेडकर महान अर्थशास्त्री भी थे, आजादी से पहले इसके महत्व को रेखांकित करते हुए उन्होंने कहा था- "इतिहास साक्षी है कि जहां नीतिशास्त्र की विजय होती है। यह कभी नहीं देखा गया कि प्राप्त हितों को किसी ने अपनी मंशा से कभी परित्याग किया हो, जब तक कि उस पर काफी दबाव न डाला गया हो। ऐसी दबाव डालने वाली शक्ति अछूत अपने आप में पैदा करेंगे, इसकी आशा नहीं की जा सकती। वे गरीब हैं और छितरे हुए हैं, यदि वे अपना सिर उठाते हैं तो कुचल दिए जाते हैं"। जाहिर है कि यह स्थिति आज भी बरकरार है और जाति के आधार पर उनकी कमर तोड़ने में कोई कसर नहीं छोड़ी जाती।

बाबासाहेब का समाज दर्शन हो, या मानवतावादी दर्शन हो, उसमें बुद्ध दर्शन साफ झलकता है। उनके शब्दों में- "सकारात्मक दृष्टि से मेरा समाज-दर्शन तीन शब्दों में अन्तर्निहित कहा जा सकता है। स्वतन्त्रता, समता और भातृभाव। परन्तु किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि मैंने अपने दर्शन की जड़े फ्रांस की क्रांति से मजबूत की है। मेरे दर्शन की जड़े धर्म में हैं, राजनीति में नहीं। मैंने उनका अनुसरण 'बुद्ध' की शिक्षा से किया है। बुद्ध धर्म को भारत में पुन:स्थापित करने में डॉ॰ अम्बेडकर का अतुल योगदान है। इसमें कोई दो राय नहीं कि इतिहास का निर्माण घटनाओं से होता है। भारतीय इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता है कि किसी नेता के कहने पर पांच लाख लोग एक साथ ही धर्मांतरण किए हों। जब महास्थविर चन्द्रमणि त्रिशरण के साथ पंचशील दे रहे थे, जिसकी आवाज पूरे नागपुर में गुंजायमान हो रहा थी। नागपुर के धर्मांतरण की सूचना हिंदुस्तान में ही नहीं विश्व के कोने-कोने में बिजली की तरह फैल गई। इस पर महापंडित राहुल सांस्कृत्यापन का कहना था कि डॉ॰ अम्बेडकर ने नए सिरे से भारत में बौद्ध धर्म का ऐसा एक खम्भा गाड़ दिया है, जिसे कोई नहीं हिला सकता।

डॉ॰ अम्बेडकर महान थे, उनका व्यक्तित्व उच्च था, और उनके कार्य अद्धितीय थे, वे सच्चे राष्ट्र भक्त थे। उनके गुणों पर प्रकाश डालते हुए 'डॉ॰ अम्बेडकर द्वारा परिकल्पित 21वीं शताब्दी का भारत' विषय पर सेमिनार के उद्घाटन के अवसर पर भारत के राष्ट्रपति श्री प्रणव मुखर्जी ने कहा कि बाबासाहेब डॉ॰ भीमराव अम्बेडकर भारतीय संविधान के महान शिल्पी ही नहीं, अपितु तमाम विविधताओं एवं विसमताओं से भरे इस देश को एकता के सूत्र में बांधने वाले सच्चे राष्ट्र भक्त थे। उन्होंने राष्ट्र के नवनिर्माण के लिए जो भी जरूरी था, उसे प्रभावी ढंग से संसद में रखा। इस कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए भारत सरकार के सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री ने कहा कि डॉ॰ अम्बेडकर का बहुआयामी व्यक्तित्व एवं कृतित्व हजारों वर्षो से शोषित एवं पीड़ित मानवता को सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, शैक्षिक एवं राजनैतिक दुर्दशा से छुटकारा दिलाने के साथ-साथ भारत उसे चहुंमुखी विकास को प्रेरणा देता है।

इसमें संदेह नहीं कि भेदभाव पूर्ण व्यवस्था के पोषकों की सुनियोजित साजिश के कारण शोषित वर्गों को संविधान सम्मत अधिकार और सुविधाएं भी नहीं मिल पा रही हैं और आजादी के इतने लम्बे अरसे के बाबजूद डॉ॰ अम्बेडकर संघर्ष शीलता, विद्वत्ता, देश व समाज के प्रति निष्ठा और कर्मठता के आधार पर ही बराबरी और खुशहाली की मंजिल प्राप्त कर सकते हैं। ■

(लेखक माने माने अम्बेडकरवादी विचारक हैं)

संस्कृति एवं समाज

■प्रो॰ श्रीप्रकाश सिंह

प्रत्येक मानव समाज एवं राष्ट्र की एक सांस्कृतिक पहचान एवं विरासत होती है। विरासत को संजोकर रखना, इसका संवर्धन करना, समृद्ध करना और उससे संबद्ध ज्ञान प्राप्त करना प्रत्येक व्यक्ति का परम कर्त्तव्य है। राष्ट्र एवं समाज की आत्मा के रूप में जीवमान इस तत्व का ज्ञान हमें राष्ट्र के प्रति अनुराग से भर देता है और हम इसी संस्कृति के सम्वेग में राष्ट्र और समाज के सर्वस्व न्यौछावर करने को उद्यत हो जाते हैं। संस्कृति की परिभाषाएं बहुत हो सकती हैं परन्तु भारतीय समाज के परिप्रेक्ष्य में संस्कृति के मूल तत्व जो कि सनातन है, समाज को सम्बोधित करते हैं, का उल्लेख सहज-सुलभ रूप में किया जा सकता है। भारतीय समाज की संस्कृति के मूल्यों को संक्षेप में अग्रांकित तत्वों के माध्यम से विश्लेषित किया जा सकता है। वसुधैव कुटुम्बकम्, सर्वेभवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया, सर्वतो भावेन कल्याणः, अहिंसा, परमो धर्मः, धर्म, अध्यात्म, समन्वयकारी पुरुषार्थ, कर्त्तव्य प्रधानता, प्रकृति प्रेम, व्यष्टि-समष्टि आदि। भारतीय संस्कृति की व्यापकता के विपरीत समाज में जाति, वर्ग, पंथ, भेद को महत्त्व प्राप्त हुआ है और संस्कृति के मूल तत्वों की उपेक्षा हुई है। अप-संस्कृति का विकास हुआ है। प्राचीन सनातन सामाजिक मूल्य और गौरव गाथाएं जो संस्कृति के प्रवाह की प्रतीक हैं, को परम्परावादी, विकास विरोधी, धर्मांधता आदि के दायरे में सिमटाकर समाज को दिग्भ्रमित किया जा रहा है।

भारत की गंगा, यमुनी संस्कृति की व्यापकता को धीरे-धीरे समाज भूलता जा रहा है। यह हमारे सामाजिक धार्मिक व्यवहार का हिस्सा था। स्वभावतः हम इसका अनुसरण करते थे, मानते थे, अपनाते थे परन्तु इसका स्थान व्यक्ति के स्वार्थ और उसके जातीय-वर्णीय स्वार्थ ने ले लिया है। धर्म (सामाजिक आचरण) और अध्यात्म से अनुप्राणित इस समाज को आधुनिक भौतिकवाद ने इस तरह प्रभावित किया है कि प्रसिद्ध राजनीति विज्ञानी हाब्स की व्यक्ति और व्यक्तिवाद की कल्पना साकार हुई है। व्यक्ति-व्यक्ति का दुश्मन बनता जा रहा है। सौमनस्य, सहिष्णुता, सौहार्द, समभाव, समानता, सर्वस्पर्शी व्यवस्था, समेकित विकास, पूरकता, न्याय, समन्वय, एक दूसरे के प्रति सम्मान आदि का विचार धीरे-धीरे लुप्त हो रहा है जबकि यही तत्व भारतीय संस्कृति का प्राण है। इसी सांस्कृतिक मूल्य में समग्र का कल्याण है। संस्कृति के समक्ष प्रश्न अवश्य है लेकिन संकट नहीं है क्योंकि भारतीय संस्कृति ने बार-बार इस तथ्य को स्थापित किया है कि इसमें संयोजन, संतुलन और समावेशित कर लेने की अपार क्षमता है। विरासत और इतिहास साक्षी है कि इस संस्कृति ने इस्लाम, वाह्य आक्रमण, ब्रिटिश सभ्यता. संस्कृति, उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद आदि का आघात एवं प्रहार झेलते हुए अपने अस्तित्व को न सिर्फ बचाया अपितु भारतीय सभ्यता को भी बचाया तथा समृद्ध किया। ध्यान देने योग्य विचार यह है कि भारत की ही तरह प्राचीन मिश्र, यूनान, बेबीलोनिया आदि की सभ्यताओं का क्षरण हो गया और भारत ने अपने स्वरूप एवं चिंतन को बचाए रखा।

भारत की गंगा, यमुनी संस्कृति की व्यापकता को धीरे-धीरे समाज भूलता जा रहा है। यह हमारे सामाजिक धार्मिक व्यवहार का हिस्सा था। स्वभावतः हम इसका अनुसरण करते थे, मानते थे, अपनाते थे परन्तु इसका स्थान व्यक्ति के स्वार्थ और उसके जातीय-वर्णीय स्वार्थ ने ले लिया है।

संस्कृति के मूल्यों का अवलोकन करें तो दृष्टिगत होता है कि भारतीय समाज में अनेकानेक बुराइयों एवं कुरीतियों ने भी जन्म लिया है। इन कुरीतियों में से बहुत सारी आज भी हमारे समाज का हिस्सा है और समाज में संस्कृति के सुगम प्रवाह में अवरोधक बने हुए हैं। नारी की स्थिति, छुआछूत, विषमता पूजा पद्धति में भेदभाव आदि का उल्लेख किया जा सकता है।

संस्कृति की संवहनीय प्रकृति व आत्मा के रूप में संस्कार का उल्लेख करना

आवश्यक है। यही संस्कार संस्कृति को समृद्ध करता है और स्वयं भी संस्कृति द्वारा परिष्कृत एवं अनुकरणीय बनता है। इसीलिए संस्कारों को संस्कृति की आत्मा के रूप में स्वीकार किया गया है।

संस्कृति, सभ्यता और संस्कार का सीधा संबंध सामाजिकता, समाज और राष्ट्र के गौरव से है। राष्ट्र के गौरव की प्रतीक संस्कृति के मूल तत्वों की पुनर्स्थापना प्रत्येक राष्ट्रवादी का धर्म है क्योंकि संस्कृति और राष्ट्रवाद दोनों ही एक दूसरे पर निर्भर करते हैं। राष्ट्रवाद पुनर्स्थापना का एक साधन है और विशिष्ट परिस्थितियों में साध्य भी। संस्कृति व्यक्तिनिष्ठ न होकर समाजनिष्ठ होती है। यह किसी एक व्यक्ति विशेष का प्रणयन नहीं है अपितु अनेक व्यक्तियों, ऋषियों, मुनियों, सन्तों एवं विद्वत जनों का सदियों से किया गया बौद्धिक प्रयास है जिसका लाभ आने वाली पीढ़ियों को सदियों तक प्राप्त होता है। समाज में अवस्थित सभ्य व्यक्तियों/मानवों द्वारा साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, नैतिक, कलात्मक एवं आध्यात्मिक कार्य संस्कृति के जीवमान प्रवाह के प्रमुख माध्यम हैं। समाज के विशिष्ट जनों द्वारा किए गए कार्य, विचार, आचार, व्यवहार और समाज में इनकी मान्यता एवं स्थापित परंपराएं ही उस देश की प्रकृति और संस्कृति का निर्माण करती है। राष्ट्र का आकार कितना भी विशद क्यों न हो संस्कृति के मूल तत्व बोली-भाषा, पहनावा, खान-पान आदि प्रत्येक राष्ट्र के लिए महत्वपूर्ण हैं। यह भी सत्य है कि देशकाल की विभिन्नताओं के प्रभाव से कभी-कभी संस्कृति में भेद उत्पन्न हो जाते हैं और अप-संस्कृति का जन्म होता है। प्रसिद्ध समाज विज्ञानी राबर्ट वीर स्टीड का मानना है कि यह संस्कृति ही है जो एक व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों से एक समूह को अन्य सभी समूहों से और एक समाज को दूसरे समाज से पृथक करती है। संस्कृति वास्तव में मानव जीवन के उन तमाम तत्वों की समष्टि का नाम है जिसकी उत्पत्ति धर्म और दर्शन से होकर कला-कौशल व समाज व्यवहार में परिवर्तित हो जाती है।

संस्कृति, सभ्यता और संस्कार का भाव आत्म एवं अन्तर्मुखी है परन्तु व्यवहार बहिर्मुखी है। इसी कारण जन सामान्य भी इन विषयों पर बहुत दृढ़ता से अपना विचार प्रस्तुत करता है। सामाजिक जीवन में अपने साख, सम्मान व अस्तित्व की स्थापना, पुनर्स्थापना के लिए, दूसरे को कमतर, छोटा, अयोग्य, खराब, अपरिपक्व आदि बताने के लिए इन शब्दों का बहुत उपयोग किया जाता है। समाजशास्त्रियों दर्शनशास्त्रियों, राजनीति विज्ञानियों, शिक्षाविदों और साहित्यकारों आदि ने संस्कृति की अनेकानेक व्याख्याएं और परिभाषाएं प्रस्तुत की है। इन परिभाषाओं में श्रेष्ठ और सर्वस्वीकार्य कौन है। यह विवाद का विषय हो सकता है परन्तु इसके 'विरासत के मूल्य' भाव की सर्वत्र स्वीकार्यता है। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर ने संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में कहा है कि संस्कृति एक ऐसा गुण है जो हमारे जीवन में छाया हुआ है। यह एक आत्मिक गुण है जो मनुष्य के स्वभाव में उसी प्रकार व्याप्त है जिस प्रकार फूलों में सुगन्ध, दूध में मक्खन। ... इसका निर्माण एक या दो दिन में नहीं अपितु युग-युगान्तर में होता है।

संस्कृति, सभ्यता और संस्कार का भाव आत्म एवं अन्तर्मुखी है परन्तु व्यवहार बहिर्मुखी है। इसी कारण जन सामान्य भी इन विषयों पर बहुत दृढ़ता से अपना विचार प्रस्तुत करता है।

डॉ. सम्पूर्णानन्द इसे और स्पष्टता प्रदान करते हुए कहते हैं कि मानव का प्रत्येक विचार, प्रत्येक कृति, संस्कृति नहीं हैं पर जिन कामों से किसी देश-विशेष के समस्त समाज पर कोई अमिट छाप पड़े वही स्थायी प्रभाव ही संस्कृति है। संस्कृति वह आधारशिला है, जिसके आश्रय से जाति, समाज व देश का विशाल भव्य प्रासाद निर्मित होता है। संस्कृति के महत्व को रेखांकित करते हुए सुमित्रानन्दन पन्त ने कहा है कि उसके भीतर आध्यात्म, धर्म, नीति से लेकर सामाजिक रूढ़ि, रीति तथा व्यवहारों का सौंदर्य भी एक अन्तर-सामंजस्य ग्रहण कर लेता है। संस्कृति को हमें अपने हृदय की शिराओं में बहने वाला मनुष्यत्व का रूधिर कहना चाहिए। संस्कृति के विचार की और स्पष्टता के लिए प्रसिद्ध विचारक ई. वी. टेलर के विचारों का उल्लेख समीचीन है। उन्होंने कहा है कि उन सभी वस्तुओं के समूह को जिनमें ज्ञान, धर्मिक विश्वास, कला, नैतिक कानून, परंपराएं तथा वे सभी योग्यतायें सम्मिलित होती है, जिन्हें कोई मनुष्य समाज का सदस्य होने के नाते सीखता है, संस्कृति कहते हैं।

संस्कृति की अनेकानेक परिभाषाएं एवं व्याख्याएं की जा सकती है परन्तु सर्वमान्य सत्य यह है कि संस्कृति का संबंध मानवीय बुद्धि, स्वभाव, व्यवहार और उसकी मनोवृत्तियों से होता है। इन्हीं तत्वों की सहायता से व्यक्ति अपना विकास करता रहा है और सकारात्मक रूप में समाज को भी प्रभावित करता है। संस्कृति, साधन और साध्य दोनों है। इसकी सफलता, स्वीकार्यता, स्थापना में है। इसका सुगम प्रवाह इसकी सफलता और स्वीकार्यता का परिचायक है। संस्कृति का दायरा अत्यन्त व्यापक है। यह व्यक्तिगत व्यवहार पर निर्भर होते हुए भी समष्टिगत है। व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के साथ-साथ संस्कृति का विकास,

प्रचार-प्रसार समग्र मानव जाति में होने लगता है यही संस्कृति का जीवन है और यही जीवन राष्ट्र की चेतना को विकसित एवं स्थापित करता है। संस्कृति राष्ट्र के जन-जन द्वारा अभिव्यक्त किया गया ऐसा व्यवहार है जो कि आने वाली पीढ़ियों के लिए आदर्श स्वरूप अनुकरण होता है। यही विचार और व्यवहार वास्तविक अर्थों में उस पीढ़ी और उसके जन को सामाजिक बनाता है। यह भी विचारणीय है कि जन सामान्य सामान्यतया संस्कृति और सभ्यता दोनों को एक दूसरे के पर्याय के रूप में उपयोग करता है जबकि दोनों अलग-अलग है। इनका भेद स्पष्ट करना और उसकी समग्र व्याख्या करना प्रस्तुत लेख का उद्देश्य नहीं है, परन्तु सभ्यता और संस्कृति के कुछ तथ्यों का विश्लेषण अवश्य ही लाभदायक रहेगा।

संस्कृति और सभ्यता दोनों ही शब्दों का शाब्दिक अर्थ एक दूसरे से भिन्न है, संस्कृति शब्द की व्युत्पत्ति सम् उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से क्तिन प्रत्यय लगाकर हुई है, जिसका अभिप्राय उत्तम प्रकार से किया गया कार्य है। इसलिए सामान्यतया समाज में रहने वाले शिष्ट मनुष्यों के सभी उत्तम कार्यों को संस्कृति की श्रेणी में रखा जाता है, सभ्यता शब्द (सभा+यत्) = सभ्य शब्द का अर्थ है सभा में बैठने योग्य, समाज में रहने योग्य तथा तल् एवं टाप् प्रत्यय के योग से बने सभ्यता शब्द का अर्थ है कि व्यक्ति का वह गुण जो उसे किसी भी समाज, सभा और देश का योग्य नागरिक बनाता है। इस प्रकार सभ्यता का यह भी अर्थ हुआ कि सामाजिक नियमों और व्यवहारों को जानना उसका पालन करना, समाज के अनुरूप आचरण करना और स्व निर्देशित अनुशासन से आबद्ध रहना तथा अपनी आवश्यकता के अनुसार मूर्त एवं भौतिक पदार्थों की उत्पत्ति करना। सभ्यता एवं संस्कृति के अंतर को स्पष्ट करते हुए डॉ. बैजनाथ पुरी ने लिखा है कि संस्कृति अभ्यान्तर है, सभ्यता वाह्य है सभ्यता आसानी से अनुकरणीय है परन्तु संस्कृति को अपनाने में देर लगती है। स्वामी सत्यदेव पारिव्राजक ने भी दोनों का अंतर बताते हुए कहा है कि सभ्यता का उत्थान प्रगतिवाद और मनोभावों से जुड़ा हुआ है जबकि संस्कृति का स्वरूप मानव के सात्विक गुणों एवं आध्यात्मिक विकास से युक्त है।

नि:संदेह विद्वानों ने दोनों के शाब्दिक अभिप्राय अलग-अलग बताए हैं परन्तु विद्वान समाज भी इन्हें अलग-अलग न मानकर एक रूप, समानार्थी एवं पूरक मानता है। मानव जीवन का आध्यात्मिक उत्कर्ष संस्कृति का परिचायक है और सभ्यता उसके भौतिक अभ्युत्थान का प्रतीक है। यह दोनों ठीक उसी प्रकार से युग्म हैं जैसे मानव शरीर और आत्मा। आत्मा के बगैर शरीर नश्वर होता है और शरीर के बगैर आत्मा का कोई आधार नहीं होता है। सभ्यता और संस्कृति अन्योनाश्रित हैं ये दोनों एक दूसरे के बगैर अस्तित्वहीन हो जायेंगी। सभ्यता सांस्कृतिक क्रियाओं को शक्ति प्रदान करती है और सांस्कृतिक क्रियाओं के माध्यम से सभ्यता का रक्त संचार होता रहता है। संस्कृति, सभ्यता की दिशा और दशा दोनों ही तय करती है। सभ्यता की नींव का निर्माण संस्कृति के आधार पर ही संभव है। इसीलिए सामान्य जन के साथ-साथ विशिष्ट जन भी इन दोनों को एक दूसरे के पर्याय के रूप में विश्लेषित करते हैं।

सभी धर्म एवं प्रजातियां और प्रमुख राष्ट्र अपनी-अपनी सभ्यता की श्रेष्ठता और प्राचीनता का दंभ भरते हैं और दूसरे की सभ्यता और संस्कृति को कमतर साबित करने का प्रयास करते हैं। प्राचीनता की दृष्टि से भारतीय संस्कृति और सभ्यता का अनेकानेक संस्कृतियों में विशिष्ट स्थान है। इसकी गुणवत्ता इस तथ्य से प्रमाणित होती है कि मिश्र, यूनान, बेबीलोनिया आदि सभ्यताएं मिट गईं परन्तु भारतीय संस्कृति और सभ्यता अपने मूल स्वरूप को बचाए हुए हैं और अनुकरणीय बनी हुई है। भारतीय संस्कृति की महानतम् विशेषता यह रही है कि इसने सभी शासकों, आक्राताओं और साम्राज्यवादियों की संस्कृति एवं सभ्यता के मूलतत्वों को आत्मसात किया और अपने अस्तित्व को अक्षुण्य बनाए रखा। इसी में इसकी श्रेष्ठता है।

सभी धर्म एवं प्रजातियां और प्रमुख राष्ट्र अपनी-अपनी सभ्यता की श्रेष्ठता और प्राचीनता का दंभ भरते हैं और दूसरे की सभ्यता और संस्कृति को कमतर साबित करने का प्रयास करते हैं। प्राचीनता की दृष्टि से भारतीय संस्कृति और सभ्यता का अनेकानेक संस्कृतियों में विशिष्ट स्थान है।

वसुधैव कुटुम्बकम, परहित सरिस धर्म नहि भाई, अहं ब्रह्मास्मि, यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता, अतिथि देवो भव: सर्वधर्म समभाव, सत्य, अहिंसा, शांति आदि की धारणा से युक्त भारतीय संस्कृति सर्वस्पर्शी और सर्वग्राह्य है। इसकी विशेषताऐं अन्यान्य है, अगाध है परन्तु कुछ का उल्लेख आवश्यक एवं अग्रांकित है। प्राचीनता, आध्यात्मिकता, आस्तिकता, नास्तिकता, कर्त्तव्य परायणता, धर्म परायणता, पुरुषार्थ, वर्णाश्रम, पुनर्जन्म में विश्वास, यज्ञ अवतारवाद, देववाद, योगक्षेम, बड़ो एवं महापुरुषों का सम्मान, समन्वय, सौहार्द, अहिंसा, परोपकार, त्याग, निष्काम

कर्मयोग, प्रकृति प्रेम आदि अनेकानेक विशद स्वरूपा वर्णनीय विशेषताएं हैं। भारतीय संस्कृति की उपरोक्त विशेषताएं साधन न होकर साध्य है क्योंकि सभ्यता और संस्कार तथा समाज का व्यवहार सम्मिलित रूप से संस्कृति को जन्म देते हैं।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि समग्रता में उत्कृष्ट मानव व्यवहार संस्कृति का परिचायक है। यह उल्लेख करना भी महत्वपूर्ण है कि संस्कृति जैविक सम्भावनाओं तथा सामाजिक आवश्यकताओं द्वारा जनित मानव का आविष्कार है। मनुष्य संस्कृति में जन्म लेता है, उसका अनुसरण और पोषण करता है। संस्कृति सहित जन्म नहीं लेता है। व्यक्ति सामाजिक जीवन के प्रवाह के लिए अनिवार्य संस्कृतिकरण की प्रक्रिया को स्वाभाविक तौर पर अपनाता है। यही प्रक्रिया संस्कृति को जीवित भी रखती है। हमारे मानस का निर्माण करने में हमारे पास-पड़ोस के वातावरण का बहुत बड़ा योगदान होता है। इस वातावरण को निर्मित करने में संस्कृति का बहुत बड़ा योगदान है। क्योंकि संस्कृति के सभी मूल्यों, प्रतीकों और सभी उपकरणों से मानव का जुड़ाव जन्म से ही प्रारम्भ हो जाता है। यही जुड़ाव उसमें संस्कार का सृजन करते हैं और यही सृजन व्यक्ति में संस्कृति और सभ्यता के प्रति लगाव पैदा करते हैं जिसे हम संस्कार की संज्ञा देते हैं। इसका विकास और निर्माण अविरल लेकिन मंथर गति से होता है। यह परिष्कार और सुधार से सम्बद्ध है। यह विगत-आगत और निर्गत में सामंजस्य स्थापित करते हुए धीरे-धीरे अग्रसर होता रहता है। मानव ने धर्म, दर्शन, साहित्य, संगीत और कला आदि का विकास करते हुए जीवन को हितकर और सुखी बनाने का जो प्रयास पृथक-पृथक धराओं और संस्थाओं के माध्यम से किया इन सभी में संस्कृति के मूल्यों का समावेश है और ये सभी संस्कृति में समाहित है।

सामान्य जीवन व्यवहार में व्यवहार कुशल, सामाजिक, शिष्टाचारी, उत्तरदायी, जवाबदेय व्यक्ति को संस्कारी और सुसंस्कृत माना जाता है। इसलिए संस्कृति की प्रवृत्ति को समष्टिवादी भी माना जाता है। संस्कृति समाज के प्रत्येक पहलू को छूती है। समाज की प्रत्येक सामाजिक क्रिया को जोड़ने का कार्य संस्कृति द्वारा किया जाता है। इसलिए कहा जाता है कि संस्कृति राष्ट्र की एकात्मकता के अभीष्ट लक्ष्य का विशिष्ट साधन है। मानव, समाज और संस्कृति अन्योनाश्रित हैं। मानव संस्कृति का सृजन करता है और संस्कृति मानव के विभिन्न पक्षों का पोषण करती है। इसलिए मानव और संस्कृति दोंनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। संस्कृति व्यक्ति को अपने विशेष सांचे में ढालती है लेकिन व्यक्ति भी अपने बुद्धि, विवेक और सामूहिकता के माध्यम से संस्कृति के स्वरूप को प्रभावित करता है। मानव में चेतन और अवचेतन की अवस्था का होना बहुत स्वाभाविक प्रक्रिया हैं उसमें उचित-अनुचित, अनुकरणीय-उपेक्षणीय, निदंनीय- प्रशंसनीय आदि का ज्ञान भी संस्कृति एवं संस्कार के मूल्यों की ही देन है।

यह भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि संस्कृति के मूल्य, मूल्यों की सनातनता के विकास में धर्म का विशेष योगदान होता है परन्तु संस्कृति को धर्म का पर्याय नहीं माना जा सकता है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि धर्म, पन्थ, सम्प्रदाय और पूजा पद्धति में अन्तर है। भारतीय समाज की प्रवृत्ति के विपरीत हमने धर्म को पूजा पद्धति और सम्प्रदाय की श्रेणी में रख दिया है। जबकि ध र्म का स्वरूप अत्यन्त व्यापक है। इसी प्रकार हम अपसंस्कृतियों और अप-संस्कृति को भी संस्कृति का पर्याय मानने लगते हैं। उपसंस्कृति जहां संस्कृति की सघनता बढ़ाती है वहीं अप-संस्कृति, संस्कृति के मूल्य और स्वरूप को भ्रष्ट करने का प्रयत्न करती है। लेकिन संस्कृति जिसका विकास क्रमिक रूप में मंथर गति से दीर्घजीवी रूप में होता है वह धीरे-धीरे अप-संस्कृति को परिष्कृत कर उसे अपने स्वरूप का हिस्सा बना लेती है और संस्कृति का पुरुषार्थ अप-संस्कृति का परिष्कार कर समाज को समृद्ध करता रहता है। ■

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि समग्रता में उत्कृष्ट मानव व्यवहार संस्कृति का परिचायक है। यह उल्लेख करना भी महत्त्वपूर्ण है कि संस्कृति जैविक सम्भावनाओं तथा सामाजिक आवश्यकताओं द्वारा जनित मानव का आविष्कार है। मनुष्य संस्कृति में जन्म लेता है, उसका अनुसरण और पोषण करता है। संस्कृति सहित जन्म नहीं लेता है। व्यक्ति सामाजिक जीवन के प्रवाह के लिए अनिवार्य संस्कृतिकरण की प्रक्रिया को स्वाभाविक तौर पर अपनाता है।

(लेखक आई.आई.पी.ए. स्थित डॉ. अम्बेडकर चेयर्स प्रोफेसर है)

यंत्र/उपकरण की खरीद/फिटिंग के लिए विकलांग व्यक्तियों के लिए सहायता की योजना (एडिप योजना)

उद्देश्य

इस योजना का लक्ष्य विकलांग व्यक्तियों को उपयुक्त, टिकाऊ, वैज्ञानिक रूप से विनिर्मित, आधुनिक, उनकी पहुंच के भीतर मानक यंत्र और उपकरण लाकर उनकी सहायता करना है। अत: इस योजना का उद्देश्य जरूरतमंद विकलांग व्यक्तियों को टिकाऊ, परिष्कृत और वैज्ञानिक रूप से विनिर्मित, आधुनिक, मानक यंत्रों और उपकरणों की सहायता प्रदान करना है जिससे विकलांगता के प्रभावों को घटाकर उनका शारीरिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक पुनर्वास तथा उनकी आर्थिक क्षमता को बढ़ावा दिया जा सकता है।

विकलांगता की परिभाषा

नि:शक्तजन (समान अवसर, अधिकार संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995 (पीडब्ल्यूडी एक्ट) में यथा निर्धारित विकलांगता के विभिन्न प्रकारों की परिभाषाओं पर इस योजना के अंतर्गत विचार किया जाता है।

मुख्य विशेषताएं

i. एजेंसियों को इस योजना के उद्देश्य के अनुरूप ऐसे मानक यंत्रों और उपकरणों की खरीद, फेब्रीकेशन और वितरण के लिए वित्तीय सहायता प्रदान की जाएगी।

ii. अनुदानग्राही संगठन लाभार्थियों तथा यंत्र/उपकरण की पहचान, अपेक्षित कृत्रिम यंत्र/उपकरण की सलाह, फिटमेंट तथा फिटमेंटोत्तर केयर के लिए व्यावसायिक रूप से अहर्ताप्राप्त स्टाफ (मान्यताप्राप्त पाठ्यक्रमों से) के रूप में व्यावसायिक/तकनीकी विशेषज्ञता रखने वाले को वरीयता दी जानी चाहिए।

iii. अनुदानग्राही संठन फेब्रीकेशन के लिए मशीनरी/उपकरण के रूप में अवसंरचना रखने वाले, एडिप योजना के अंतर्गत किसी विकलांग व्यक्ति को दिए जाने वाले कृत्रिम यंत्र/उपकरण की फिटमेंट और रख-रखाव के लिए भी वरीयता दी जानी चाहिए।

iv. कार्यान्वयनकर्ता संगठन के पास नेटवर्क होना चाहिए तथा एडिप योजना के अंतर्गत वितरित यंत्रों/उपकरणों की फिटमेंट तथा रख-रखाव के लिए अपेक्षित अवसंरचना अर्जित/लाभ प्राप्त करने के लिए मेडिकल कालेजों/जिला अस्पतालों/ग्रामीण अस्पतालों/पीएचसी/एलिम्को/डीआरसी/कोई अन्य व्यावसायिक रूप से सक्षम एजेंसी के साथ सह-सम्पर्क स्थापित करने चाहिए।

v. सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय के प्रशासनिक नियंत्रण के अंतर्गत कार्यरत राष्ट्रीय संस्थानों, एलिम्कों और डीडीआरसी के फिटमेंट केन्द्र डीआरडीए तथा अन्य स्वायत्त संगठनों की इस योजना के अंतर्गत लाभार्थियों के लिए संतोषजनक सेवा प्रदान करने हेतु समयावधि के दौरान आवश्यक जनशक्ति और अवसंरचना विकसित करने के लिए सहायता भी करनी चाहिए।

vi. ऐसे संगठन इस योजना के अंतर्गत अनुदान के लिए आवेदन करते समय व्यावसायिक एजेंसियों के साथ अधिमानतया समझौता ज्ञापन के रूप में पर्याप्त प्रमाण प्रस्तुत करना होगा।

vii. कार्यान्वयन एजेंसी को एडिप योजना के अंतर्गत वितरित यंत्रों और उपकरणों की फिटिंग और फिटिंग के बाद देखभाल के लिए देखभाल/उपयुक्त व्यवस्था करनी होगी।

viii. इस योजना के क्षेत्र को सूचना के आदान-प्रदान और जागरूकता बढ़ाने तथा वितरण और यंत्रों/उपकरणों के उपयोग के लिए जन-मीडिया, प्रदर्शनियों, कार्यशालाओं के उपयोग को शामिल करने के लिए और विस्तारित किया गया है।

ix. यह योजना अपनी परिधि में, मेडिकल/शल्य क्रिया सुधार एवं हस्तक्षेप को भी शामिल करेगी, जो यंत्रों और उपकरणों की फिटिंग से पूर्व आवश्यक है। श्रवण बाधित और वाक् बाधित के लिए लागत 500 रूपये दृष्टिबाधित के लिए 1000 रूपये और अस्थि विकलांग के लिए 300 रूपए तक लागत हो सकती है।

योजना के अंतर्गत कार्यान्वयन एजेंसी की पात्रता

निम्नलिखित एजेंसियां सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय की ओर से, इस योजना के कार्यान्वयन के लिए, निर्धारित शर्तों और निबंधन को पूरा करने के अध्यधीन, पात्र होंगी:

i. सोसाइटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 के अंतर्गत पंजीकृत सोसाइटियां और उनकी शाखाएं, यदि कोई हो, पृथक-पृथक।

ii. पंजीकृत चेरिटेबल ट्रस्ट।

iii. जिला ग्रामीण विकास एजेंसियां, इंडियन रेडक्रास सोसाइटियां तथा जिला कलेक्टर/मुख्य कार्यकारी अधिकारी/जिला परिषद के जिला विकास अधिकारी की अध्यक्षता वाले अन्य स्वायत्त निकाय।

iv. सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय/स्वास्थ्य और कल्याण मंत्रालय के प्रशासनिक नियंत्रण के अधीन कार्यरत एलिम्को सहित राष्ट्रीय/शीर्ष संस्थान।

v. राज्य विकलांगजन विकास निगम।

vi. स्थानीय निकाय-जिला परिषद, नगर पालिकाएं, जिला स्वायत्त विकास परिषदें और पंचायतें।

viii. नेहरू युवा केन्द्र

कार्यान्वयन एजेंसियों को किसी विशेष वित्तीय वर्ष में राज्य सरकार/संघ राज्य क्षेत्र प्रशासन/राष्ट्रीय संस्थान/आरआरटीसी/डीआरसी/सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय द्वारा प्राधिकृत किसी अन्य एजेंसी से अनुशंसा प्राप्त होने के पश्चात् सहायता अनुदान संस्वीकृत किए जाएंगे। वे अपनी अनुशंसाएं, निम्नलिखित के बारे में विशेष अभ्युक्तियों के साथ भेजेंगे:

i. व्यावसायिक सक्षमता, विश्वसनीयता, सत्यनिष्ठा और एनजीओ/संगठन द्वारा योजना के संतोषजनक कार्यान्वयन हेतु मौजूदा अवसंरचनात्मक सुविधाएं।

ii. सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय द्वारा यथा निर्धारित संगठन की पात्रता।

iii. लक्ष्य समूहों के साथ सम्पर्क, अन्य गैर-सरकारी संगठनों तथा पंचायती राज संस्थाओं इत्यादि के साथ नेटवर्क के लिए क्षमता और इच्छा।

iv. क्या एनजीओ समान प्रयोजन के लिए अन्य मंत्रालयों/राज्य सरकारों इत्यादि से सहायता अनुदान प्राप्त कर रहा है?

तथापि, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय के प्रशासनिक नियंत्रण के अधीन कार्यरत राष्ट्रीय संस्थान और एलिम्को के मामले में अनुशंसा आवश्यक नहीं है।

लाभार्थियों के लिए पात्रता मानदंड

निम्नलिखित शर्तों को पूरा करने वाला कोई विकलांग व्यक्ति अधिकृत एजेंसियों के माध्यम से एडिप योजना के अंतर्गत सहायता हेतु पात्र होगा:

i. किसी आयु वर्ग का एक भारतीय नागरिक होना चाहिए।

ii. किसी पंजीकृत चिकित्सक द्वारा प्रमाणित होना चाहिए कि वह विकलांग है और निर्धारित यंत्र/उपकरण उपयोग के लिए उपयुक्त है।

iii. व्यक्ति जो नियुक्त/स्वनियोजित है अथवा पेंशन प्राप्त कर रहा है और सभी स्रोतों से उसकी मासिक आय 10,000/- रूपये से अधिक नहीं होनी चाहिए।

iv. आश्रितों के मामले में, माता-पिता/अभिभावकों की आय 8,000/- रूपये से अधिक नहीं होनी चाहिए।

v. वे व्यक्ति जिन्होंने समान प्रयोजन के लिए विगत तीन वर्षों के दौरान सरकार/स्थानीय निकायों तथा गैर-सरकारी संगठनों से सहायता प्राप्त नहीं की है। तथापित, 12 वर्ष से कम आयु के बच्चों के लिए यह सीमा एक वर्ष होगी।

कार्यान्वयन एजेंसी के लिए सहायता की मात्रा

किसी विशेष वित्तीय वर्ष के दौरान किसी कार्यान्वयन एजेंसी तथा उसकी शाखाओं (पृथक-पृथक) के लिए निर्मुक्त की जाने वाली सहायता की मात्रा पर कोई सीमा नहीं लगानी चाहिए। तथापि, दिए जाने वाले अनुदान की मात्रा पर निर्णय करते समय एजेंसी का कार्यनिष्पादन, व्यावसायिक विशेषज्ञता, क्षमता, गत वर्षों का रिकार्ड तथा विस्तार क्षमताओं का ध्यान रखा जाना चाहिए।

योजना के अंतर्गत सहायता प्रदान करते हेतु शर्तें

सहायता अनुदान सामान्यतया निम्नलिखित शर्तों के अध्यधीन, दो किस्तों में निर्मुक्त किए जाएंगे:

i. कार्यान्वयन एजेंसी लाभार्थी की मासिक आय के बारे में संतुष्ट होने के लिए पूर्णत: सक्षम होगी और संबंधित सक्षम अधिकारी से प्रमाण पत्र प्राप्त करेगी। इस संबंध में सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय द्वारा जारी दिशा-निर्देशों के अनुसार लाभार्थियों की पहचान किसी विशेषज्ञ द्वारा की जानी होगी।

ii. कार्यान्वयन एजेंसी योजना के अंतर्गत सहायता दिए गए लाभार्थियों के बारे में निर्धारित प्रपत्र में एक रजिस्टर रखेगी।

iii. कार्यान्वयन एजेंसी योजना के अंतर्गत सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय से प्राप्त और उपयोग की गई निधियों का एक पृथक खाता रखेगी। एडिप योजना के अंतर्गत निधि परिचालित किए जाने वाले एक पृथक बैंक खाते में रखी जाएगी।

iv. कार्यान्वयन एजेंसी के प्रमुख से इस आशय का एक प्रमाणपत्र कि निधियों का उपयोग कर लिया गया है। संगठन द्वारा सहायता दिए गए लाभार्थियों की एक सूची निर्धारित प्रपत्र में हार्ड तथा साफ्ट कापी दोनों में प्रस्तुत की जाएगी।

v. किसी वित्तीय वर्ष के अंतिम लेखा उपयोग प्रमाण पत्र तथा वित्तीय वर्ष की समाप्ति के छह माह के भीतर सीए द्वारा हस्ताक्षरित लेखापरीक्षित खातों के माध्यम से प्रस्तुत किए जाएंगे।

vi. कार्यान्वयन एजेंसी लाभार्थियों से एक वचन प्राप्त करेगी कि उसने विगत दो वर्षों के दौरान किसी अन्य एजेंसी/स्रोत से इस प्रकार की सहायता प्राप्त नहीं की है और कि उसने विगत तीन वर्षों के दौरान किसी अन्य एजेंसी/स्रोत से इस प्रकार की सहायता प्राप्त नहीं की है और वह इसे अपने वास्तविक उपयोग के लिए रखेगा।

vii. कार्यान्वयन एजेंसी किसी अधिकारी/केन्द्रीय सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय द्वारा प्राधिकृत एजेंसी अथवा राज्य सरकार/संघ राज्य क्षेत्र प्रशासन/राष्ट्रीय संस्थान/डीआरसी इत्यादि द्वारा निरीक्षण के लिए खुली होगी।

viii. जब भारत सरकार को यह विश्वास करने का कारण हो कि संस्वीकृति अनुमोदित प्रयोजन के लिए उपयोग नहीं की जा रही है तो यह धनराशि कार्यान्वयन एजेंसी से ब्याज सहित वसूली जाएगी तथा उस एजेंसी को आगे कोई सहायता नहीं दी जाएगी।

ix. किसी विशेष वर्ष के दौरान किसी कार्यान्वयन एजेंसी के लिए दी जाने वाली सहायता की मात्रा भारत सरकार द्वारा तय की जाएगी। अत: कार्यान्वयन एजेंसी इस योजना के अंतर्गत कोई धनराशि खर्च नहीं करेगी बशर्ते कि निधियां उनके लिए इस प्रयोजन हेतु संस्वीकृत की गई हो।

x. कम से कम 25% लाभार्थी बालिका/महिला होनी चाहिए।

सहायता अनुदान की ओर अधिक संस्वीकृति और निर्मुक्ति

उत्तरवर्ती वित्तीय सहायता पूर्ववर्ती वर्ष के अनुदान के लेखापरीक्षित खातों तथा निर्धारित प्रपत्र में लाभार्थियों के स्थायी पतों सहित सूची प्रत्येक वित्तीय वर्ष की दूसरी तिमाही के अंत से पूर्व आवश्यक रूप से प्रस्तुत की जाएगी।

(विशेष जानकारी मंत्रालय के वेबसाइट www.socialjustice.nic.in पर)

लोकतंत्र और शिक्षा

■डॉ. सोना दीक्षित

एक संदर्भ में डॉ. बी.आर. अम्बेडकर लोकतंत्र सरकार की शासन-प्रणाली के बारे में बताते हुए कहते हैं–'जिससे सामाजिक जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन रक्तपात के बिना लाया जाता है–यह यथार्थ परीक्षा है। यह शायद कड़ी परीक्षा है।' लोकतंत्रीय व्यवस्था वह है, जिसमें जनता की संप्रभुता हो। जनता का क्या अर्थ है? संप्रभुता कैसी हो और कैसे संभव हो? यह सब विवादास्पद विषय रहे हैं। फिर भी, जहां तक लोकतंत्र की परिभाषा का प्रश्न है, उसके लिए अब्राहम लिंकन की परिभाषा प्रसिद्ध है, जो इस प्रकार है–'लोकतंत्र जनता का, जनता के लिए और जनता द्वारा शासन-पद्धति मानी जाती है।' लोकतंत्र में जनता ही सत्ताधारी होती है, उसकी अनुमति से शासन होता है, उसकी प्रगति ही शासन का एक मात्र लक्ष्य माना जाता है। परंतु लोकतंत्र केवल एक विशिष्ट प्रकार की शासन-प्रणाली ही नहीं है, वरन् एक विशेष प्रकार के राजनीतिक संगठन, सामाजिक संगठन, आर्थिक व्यवस्था तथा एक नैतिक एवं मानसिक भावना का नाम भी है। लोकतंत्र जीवन का समग्र दर्शन है, जिसकी व्यापक परिधि में मानव के समस्त पहलू आ जाते हैं। लोकतंत्र की भावना जनता की संप्रभुता है, जिसकी परिभाषा समय के साथ बदलती रही है।

सामान्यत: लोकतंत्र-शासन-व्यवस्था दो प्रकार की मानी जाती है–

1. विशुद्ध या प्रत्यक्ष लोकतंत्र, तथा
2. प्रतिनिधि सत्तात्मक अथवा अप्रत्यक्ष लोकतंत्र

वह शासन-व्यवस्था, जिसमें देश के समस्त नागरिक प्रत्यक्ष रूप से राज्य-कार्य के संपादन में भाग लेते हैं, वह प्रत्यक्ष लोकतंत्र कहलाता है। इस प्रकार का लोकतंत्र अपेक्षाकृत छोटे आकार के समाज में ही संभव हो सकता है, जहां समस्त निर्वाचक एक स्थान पर एकत्र हो सकें। प्रतिनिधि लोकतंत्र में जन-भावना की अभिव्यक्ति जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा की जाती है। जनता स्वयं शासन न करते हुए भी निर्वाचन-पद्धति के द्वारा शासन को वैधानिक रीति से उत्तरदायित्व पूर्ण बना सकती है। यही आधुनिक लोकतंत्र का मूल विचार है।

सामान्यतया दो प्रकार के परंपरागत लोकतंत्रीय संगठनों द्वारा जन-स्वीकृति प्राप्त की जाती है, संसदात्मक तथा अध्यक्षात्मक। संसदात्मक व्यवस्था का तथ्य है कि जनता एक निश्चित अवधि के लिए संसद सदस्यों का निर्वाचन करती है। संसद द्वारा मंत्रिमंडल का निर्माण होता है। मंत्रिमंडल संसद के प्रति उत्तरदायी होता है और सदस्य जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं। अध्यक्षात्मक व्यवस्था में जनता व्यवस्थापिका और कार्यकारिणी के प्रधान राष्ट्रपति का निर्वाचन सीधे तौर पर करती है। ये दोनों एक दूसरे के प्रति नहीं, बल्कि सीधे और अलग-अलग जनता के प्रति विधि-निर्माण तथा प्रशासन के लिए क्रमश: उत्तरदायी होते हैं। इस शासन-व्यवस्था के अंतर्गत राष्ट्र का प्रधान राष्ट्रपति ही वास्तविक प्रमुख होता है। इस प्रकार लोकतंत्र में समस्त शासन-व्यवस्था का स्वरूप जन-सहमति पर आधारित मर्यादित सत्ता के आदर्श पर व्यवस्थित

होता है।

लोकतंत्र का आधुनिक स्वरूप
(Modern Form of Democracy)

समय के साथ लोकतांत्रिक विचारधारा के समर्थक व कुछ अन्य विचारक हुए हैं, जिन्होंने लोकतंत्र को एक सम्यक दर्शन के रूप में प्रस्तुत किया है, जो मानव-जीवन के विभिन्न पहलुओं से सुसम्बद्ध है। यहां तक कि बॉयड ने तो इसे जीवन जीने की एक पद्धति मान लिया है और जीने की पद्धति से उसका तात्पर्य है 'जीवन के प्रत्येक प्रमुख क्षेत्र को प्रभावित करने वाली' विचारधारा। इसी भाव की भांति आई.एल. कैण्डल ने भी लोकतंत्र को परिभाषित किया है-''एक आदर्श के रूप में लोकतंत्र व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं उत्तरदायित्व पर आधारित जीवन जीने की एक पद्धति है।'' किलपैट्रिक के अनुसार ''लोकतंत्र जीवन की एक पद्धति है, सहचारी जीवन की एक विशेषता है, जो

मानव के व्यक्तित्व के लिए सक्रिय सम्मान पर आधारित है।'' भारतीय दार्शनिक एवं चिंतक डॉ. राधाकृष्णन् ने लोकतंत्र को ''मात्र एक राजनैतिक व्यवस्था ही नहीं माना है, बल्कि एक जीवन शैली के रूप में देखा है।''

उपर्युक्त कथनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आधुनिक लोकतंत्र को एक नई जीवन-शैली के रूप में स्थापित किया गया है। जीवन-दर्शन के अन्तर्गत मनुष्य जीवन के अन्य अनेक पक्षों का अवलोकन किया जाता है, जैसे मानव-जीवन का सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक आयाम मुख्य रूप से विचारणीय होते हैं। अत: आगे के पृष्ठों में मानव-जीवन के इन्हीं आयामों पर लोकतांत्रिक आदर्शों के परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाएगा।

लोकतंत्र का सामाजिक स्वरूप (Social form of Democracy)

यह सार्वभौमिक सत्य है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, अत: उसकी जीवन-शैली उसके समाज के अनुरूप ही निर्धारित होती है। जिस समाज में वह रहता है, उसकी प्रकृति कैसी है और उसके आदर्श एवं मान्यताएं क्या हैं? यह जानना भी आवश्यक है। उदाहरण के लिए भारतीय समाज में विभिन्न वर्ण, जातियां और उपजातियां हैं। उसमें जाति और सम्प्रदाय आदि के आधार पर ऊंच-नीच का भेदभाव भी व्याप्त रहता है। इस प्रकार के भाव एवं सामाजिक व्यवस्था लोकतंत्र की प्रकृति एवं आदर्श के प्रतिकूल हैं। लोकतांत्रिक समाज में सब व्यक्तियों को उनकी क्षमता, शक्ति, योग्यता एवं सामर्थ के अनुसार बिना भेदभाव किए विकास के समान अवसर प्रदान किए जाते हैं। महान शिक्षाशास्त्री प्रोफेसर जॉन ड्यूवी ने लोकतांत्रिक समाज के स्वरूप को अपने शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया है–'एक ऐसा समाज, जो मानवता के आधार पर सहभागिता हेतु अपने सदस्यों के कल्याण ार्थ प्रावधान करता है तथा जो सहचारी जीवन के विभिन्न रूपों में अन्त:क्रिया के द्वारा अपनी संस्थाओं के नमनीय पुनर्समायोजन को सुदृढ़ करता है, वह प्रजातंत्रात्मक होता है।'

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने भी प्रजातंत्र के सामाजिक स्वरूप को स्वीकार किया है, जिसमें भेदभाव को कोई भी स्थान नहीं है। राधाकृष्णन् आयोग में कहा गया है–'लोकतंत्र समान अधिकार तथा समान स्वतंत्रता के सिद्धान्तों पर आधारित होता है, जिसमें जाति, धर्म, लिंग एवं आर्थिक स्तर पर भेदभाव को कोई स्थान प्राप्त नहीं है।' रायबर्न की मान्यता है कि 'लोकतंत्र वह प्रणाली है, जिसके द्वारा एक समुदाय के सदस्य एक साथ मिलकर रहते हैं, ताकि प्रत्येक सदस्य समुदाय को अधिकाधिक सेवा प्रदान कर सके तथा समुदाय प्रत्येक व्यक्ति को अधिकतम सेवा दे सके।'

यह सार्वभौमिक सत्य है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, अत: उसकी जीवन-शैली उसके समाज के अनुरूप ही निर्धारित होती है।

विभिन्न विद्वानों की मान्यताओं के आधार पर यह निष्कर्ष प्राप्त किया जा सकता है कि समान अधिकार, समान स्वतंत्रता, सामूहिक जीवन, विकास के समान अवसर आदि सामाजिक लोकतंत्र के मुख्य अवयव होते हैं। सामाजिक लोकतंत्र में किसी प्रकार की ऊंच-नीच, जातिवाद, वर्णवाद एवं सम्प्रदायगत भेदभाव के लिए कोई स्थान प्राप्त नहीं है। यह एक ऐसी आदर्श स्थिति होती है, जिसकी प्राप्ति हेतु हमें निरंतर प्रयास करते रहना पड़ता है, हो सकता है कि फिर यह स्थिति हमें पूर्णरूपेण प्राप्त नहीं हो सके। इतिहास का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में यूनान एवं मध्यकाल के एथेंस में कुछ सीमा तक ऐसी सामाजिक व्यवस्था रही थी और वर्तमान में संयुक्त राज्य अमेरिका एवं इंग्लैण्ड भी सामाजिक समानता के इस आदर्श को प्राप्त करने में सफल रहे हैं।

लोकतंत्र का आर्थिक स्वरूप (Economic form of Democracy)

लोकतंत्र का यह रूप इस मान्यता पर आधारित है कि देश की सम्पत्ति पर संपूर्ण प्रजा का अधिकार होता है। इस प्रकार के लोकतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यतानुसार कार्य करने एवं तद्नुसार धनोपार्जन करने की स्वतंत्रता होती है। इस व्यवस्था में देश के आर्थिक विकास हेतु, जो भी नीतियां निर्धारित की जाएंगी और जो भी योजनाएं बनायी जाएंगी, उनमें सभी लोगों के हितों को ध्यान में रखा जाएगा। देश की पूंजी केवल कुछ ही लोगों के हाथों में सिमटकर न रह जाए, बल्कि सभी लोगों में समान रूप से वितरण हो और उत्पादन के साधनों पर भी आम जनता का अधिकार हो। प्रत्येक व्यक्ति को उसके श्रम का उचित मूल्य मिलना चाहिए, आदि ऐसी कुछ बातें हैं, जो आर्थिक लोकतंत्र के स्वरूप का निर्धारण करती हैं। कार्ल मार्क्स ने तो यहां तक अपना सिद्धांत स्थापित किया है कि समस्त सामाजिक संगठन आर्थिक नियंत्रण से बंधे होते हैं। सामाजिक लोकतंत्र भी उत्पादन की प्रक्रिया एवं अन्य प्रक्रियाओं से प्रभावित होता है। इस सन्दर्भ में होरेस एम. कालेन का कथन है कि–'स्वतंत्रता एवं दुर्लभ्यता (अकाल) एक साथ नहीं रह सकते। जहां आर्थिक आवश्यकताओं का अंत होता है, वहीं से स्वतंत्रता का आरंभ होता है।'' कहने का तात्पर्य यह है कि आर्थिक रूप से स्वतंत्रता तभी होगी, जब धन के वितरण में सभी को बराबर का हिस्सा मिलेगा। एक

अभावग्रस्त व्यक्ति स्वतंत्रता का आनन्द कभी नहीं उठा पाएगा। आर्थिक लोकतंत्र इसी साध्य की ओर इंगित करता है।

लोकतंत्र का सांस्कृतिक स्वरूप
(Cultural form of Democracy)

प्रत्येक राष्ट्र की अपनी एक संस्कृति होती है, किंतु उस संस्कृति के अंतर्गत अनेक उप-संस्कृतियां समाहित भी होती हैं। उदाहरण के लिए भारतीय संस्कृति के अंतर्गत बौद्ध, जैन, पारसी, हिंदू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, आदि उप-संस्कृतियां भी हैं। इसी प्रकार प्रत्येक प्रदेश में रहने वालों की संस्कृतियां भी भिन्न होती हैं। उदाहरण के लिए पश्चिमी बंगाल के निवासियों की अपनी सांस्कृतिक परंपरा है, उनके खान-पान, वेश-भूषा धारण करने की पद्धति, शादी-ब्याह के रीति-रिवाज एवं भाषा आदि, महाराष्ट्र की संस्कृति से भिन्न हैं। दक्षिण भारत के लोगों की संस्कृति बिल्कुल भिन्न है। कहने का तात्पर्य यह है कि भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में रहने वाले और विभिन्न संस्कृतियों को धारण करने वाले लोगों के मध्य भाईचारे, प्रेम, स्नेह, पारस्परिक सहयोग, जैसे लोकतांत्रिक आदर्शों को प्राप्त करने हेतु तैयार करना पड़ेगा। प्रत्येक को एक दूसरे की संस्कृति का सम्मान करने की शिक्षा देनी होगी, क्योंकि इस सांस्कृतिक वैभिन्यता में भी कुछ सामान्य तत्त्व विद्यमान होते हैं, जिनसे उनका परिचय कराना होगा। अनेकता के बीच एकता एवं अखण्डता स्थापित करके भारतीय लोकतंत्र को सफल बनाना होगा।

लोकतंत्र का शैक्षणिक स्वरूप
(Educational form of Democracy)

भारत में लोकतंत्र के इस स्वरूप की कल्पना कब साकार होगी, जब सभी को शिक्षा प्राप्ति के समान अवसर प्राप्त करने की नीतियां बनें और साधनों की व्यवस्था की जाए। इतना ही नहीं, बल्कि यहां तक भी कहा जाता है कि लोकतांत्रिक व्यवस्था में शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार होता है। शिक्षा के क्षेत्र में लोकतंत्र के सिद्धांतों को लागू करना ही लोकतंत्र का शैक्षिक स्वरूप कहा जायेगा। इस सन्दर्भ में बी.एच. बोर्ड स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि 'शिक्षा के क्षेत्र में लोकतंत्र का अर्थ हुआ व्यक्तिगत विभिन्नताओं, स्व-प्रयत्न, स्वतंत्रता एवं स्व-प्रकाशन पर बल देना।...'

किंतु यहां यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि किसी भी देश में सही अर्थ में लोकतंत्र तभी स्थापित हो पाता है, जब लोकतंत्र के विभिन्न स्वरूपों में तादात्मयता एवं एकरूपता हो। वे आपस में भली प्रकार सुसमायोजित हों। जब मानवीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में लोकतांत्रिक आदर्शों का अनुपालन किया जायेगा, तभी लोकतंत्र की सफलता को सुनिश्चित किया जा सकेगा। इस संदर्भ में हैरिसन टी. इलियट ने कहा है कि 'सच्चे लोकतंत्र का उद्देश्य अपने सभी सामाजिक, व्यावसायिक तथा राजनैतिक मामलों के संचालन में अपनी अधिकतम क्षमता के साथ प्रत्येक व्यक्ति की सक्रिय सहभागिता को सुनिश्चित करना है।'

लोकतंत्र की आधारभूत मान्यताएं

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में यह घोषणा की गई है–'भारतीय लोग भारत में सार्वभौमिक लोकतंत्रात्मक गणतंत्र की स्थापना के लिए वचनबद्ध हैं और इस देश के समस्त नागरिकों के लिए सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक न्याय की व्यवस्था करेंगे। विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, आस्था एवं आराधना की स्वतंत्रता की व्यवस्था करेंगे, सभी के लिए स्तर एवं अवसर की समानता का प्रबंध करेंगे तथा राष्ट्र की एकता और व्यक्ति की गरिमा की रक्षा करते हुए इन सब में भ्रातृत्व की भावना का विकास करेंगे।'

उपर्युक्त विवेचन एवं भारतीय संविधान में किए गए प्रावधानों के आधार पर लोकतंत्रात्मक व्यवस्था की कुछ मान्यताएं इस प्रकार निर्धारित की जा सकती हैं–

1. मानव के प्रति आस्था का भाव होना किसी भी लोकतंत्र की मूलभूत मान्यता है, क्योंकि मनुष्य ही किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था का निर्माता एवं संचालक होता है।
2. प्रत्येक व्यक्ति में राष्ट्रीय उत्पादन में योगदान करने के लिए क्षमताएं, अभूतपूर्व योग्यताएं, शक्ति एवं बुद्धि होती है। अतएव लोकतंत्र के प्रत्येक क्षेत्र में व्यक्ति की सहभागिता अनिवार्य मानी गई है।
3. प्रत्येक व्यक्ति को अपने विचार अभिव्यक्त करने, अपने विश्वास, आस्था एवं पूजा-अर्चना के लिए स्वतंत्रता प्राप्त होनी चाहिए, ताकि वह आध्यात्मिक क्षेत्र में अपना विकास कर सके। लेकिन अपनी स्वतंत्रता के साथ-साथ दूसरों की स्वतंत्रता की भी रक्षा होनी चाहिए। स्वतंत्रता का अर्थ स्वच्छन्दता नहीं है।
4. लोकतांत्रिक व्यवस्था में किसी भी प्रकार के भेदभाव का कोई स्थान नहीं होता। जाति, धर्म, लिंग, धन आदि के आधार पर व्यक्ति के साथ कोई भेद नहीं किया जायेगा। सभी को उनकी योग्यतानुसार प्रगति करने के लिए समान अवसर दिए जायेंगे।
5. लोकतंत्र में सभी चीजों पर सभी लोगों का अधिकार होता है, किंतु इन वस्तुओं की सुरक्षा का उत्तरदायित्व भी उन्हीं का होता है।
6. लोकतंत्र में सह-अस्तित्व की मान्यता को स्थान दिया गया है। इसका तात्पर्य है कि सभी लोगों में भाई-चारे, प्रेम एवं परस्पर सहयोग की सद्भावना का होना।
7. लोकतांत्रिक व्यवस्था में युद्धों को कोई स्थान नहीं होता, वे युद्ध चाहे आंतरिक हों या बाह्य। समस्याओं का समाधान प्रेम, समझौते और आपस में विचार-विमर्श द्वारा किया जाना चाहिए।

8. लोकतांत्रिक व्यवस्था में आर्थिक व सामाजिक शोषण का कतई स्थान नहीं होता। भारतीय संविधान में भी अल्पसंख्यक एवं वंचित वर्गों की सुरक्षा हेतु प्रावधान किए गए हैं, ताकि उनका किसी प्रकार से शोषण न किया जा सके।
9. लोकतंत्र में धार्मिक कट्टरता एवं साम्प्रदायिक संकीर्णता को दूर रखा जाता है, क्योंकि इनसे मानव-जीवन में घृणा एवं असहिष्णुता को बढ़ावा मिलता है। वैसे लोगों को इस बात की पूर्ण स्वतंत्रता होती है कि वे अपने धर्म का अनुसरण करें, किंतु राज्य इस बात में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में कोई भाग नहीं लेता।
10. लोकतंत्र में बाह्य अनुशासन की व्यवस्था तो रहती है, परन्तु लोगों में स्व-अनुशासन, व्यवहार-नियंत्रण को वरीयता दी जाती है।
11. लोकतंत्र स्वयं में एक अतिव्यापक दृष्टिकोण को आत्मसात् किए हुए है, इसीलिए इसमें प्रत्येक व्यक्ति के विचारों एवं दृष्टिकोणों का स्वागत किया जाता है।

लोकतंत्र और शिक्षा

चीन के दार्शनिक मनुष्य को नीतिशास्त्र में दीक्षित कर उसे राज्य का विश्वासपात्र सेवक बनाना ही शिक्षा का उद्देश्य मानते थे। प्राचीन भारत में सांसारिक बातों का अभ्युदय, पारलौकिक अनुभव, कर्मकांड, तथा लौकिक विषयों का बोध और परा-विद्या से निःश्रेयस की प्राप्ति ही विद्या के उद्देश्य थे। परा-विद्या मानव की विमुक्ति का साधन मानी जाती थी। तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला आदि विश्वविद्यालय प्राकृतिक विषयों के ज्ञान के अतिरिक्त शीलपूर्ण जीवन के महान् स्थल थे। भारतीय शिक्षा-दर्शन का आध्यात्मिक धरातल विनय एवं नैतिक नियम आदि पर सदियों तक अवलंबित रहा है।

प्लेटो और अरस्तु के दार्शनिक चिंतन के महान समर्थक थे। प्लेटो का कहना है कि–'बीस वर्ष की आयु तक भावी राज्यशासकों को शारीरिक उन्नति, साहित्य, धर्मशास्त्र, पुरातत्व और संगीत की शिक्षा मिलनी चाहिए। बीस से तीस वर्ष तक रेखागणित, अंकगणित, ज्योति व गणित आदि का पारदर्शी ज्ञान उन्हें प्राप्त करना है। तीस से पैंतीस वर्ष तक उन्हें गंभीर दार्शनिक ऊहापोह करके प्रत्ययों (Ideas) का और शुभ-प्रत्यय (IDEA OF THE GOOD) का प्रकृष्ट ज्ञान प्राप्त करना है। गणित और दर्शन का इतना विशद् ज्ञान प्राप्त करने पर भी सिर्फ चिंतन में निरंतर रहना उनका उद्देश्य नहीं है। दर्शन के उत्तुंग शिखर से उतर कर उन्हें फिर अज्ञानावृत्त संसार में आकर राज्य और समाज की बुराइयों का निराकरण करना है। पैंतीस से पचास वर्ष की अवस्था तक अवश्य ही उन्हें फिर अज्ञानावृत्त संसार में आकर राज्य और समाज की बुराइयों का निराकरण करना है।' पैंतीस से पचास वर्ष की अवस्था तक अवश्य ही उन्हें राजकीय कर्मयोग का मार्ग अपनाना है और सामाजिक कल्याण की सिद्धि करनी है। राजनीतिक दृष्टिकोण यह विचार अरस्तु में अधिक प्रबल दिखाई देता है। मनुष्य को राजनीतिक प्राणी मानकर शिक्षा को सदाभ्यास प्राप्ति का वह परम साधन मानता है। विभिन्न नागरिकों में शिक्षा से ही राज्यनिमित्तक शील का विकास संभव है। शिक्षा से मानसिक उन्नयन तथा अवकाश का सदुपयोग होता है, ऐसा अरस्तु ने स्वीकार किया है, किंतु प्लेटो के समान तात्विक और दार्शनिक शिक्षा पर उसने ध्यान नहीं दिया है। फिर भी प्लेटो की भांति अरस्तु भी राज्य का पूरा नियंत्रण शिक्षा पर मानता है।

चीन के दार्शनिक मनुष्य को नीतिशास्त्र में दीक्षित कर उसे राज्य का विश्वासपात्र सेवक बनाना ही शिक्षा का उद्देश्य मानते थे। प्राचीन भारत में सांसारिक बातों का अभ्युदय, पारलौकिक अनुभव, कर्मकांड, तथा लौकिक विषयों का बोध और परा-विद्या से निःश्रेयस की प्राप्ति ही विद्या के उद्देश्य थे।

मध्ययुगीन यूरोप में देववाद की प्रधानता थी। संत अगस्तीन ने दिव्य नगर का संदेश दिया और थॉमस अक्वायूनास (Thomas Aquines) ने सनातन नियम और नैसर्गिक नियमों का उद्बोधन किया। मध्ययुग के अंतिम चरण में ऑक्सफोर्ड, कैम्ब्रिज, पेरिस विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई और उनमें भी प्रारंभ में धर्मशास्त्र के अध्ययन का ही महत्त्व रखा गया था। भारतवर्ष के मध्ययुग में शंकर, रामानुज, निंबार्क, वल्लभ आदि ने ज्ञान, भक्ति और वैराग्य का ही संदेश दिया था।

महान् दार्शनिक हेगेल शिक्षा के आध्यात्मिक प्रयोजन स्वीकार करते थे। शिक्षा का नियंत्रण राज्य के हाथ में न देकर नागरिक-समाज को प्रदान करना था तथापि उसने स्वतंत्रता पर बल नहीं दिया। हेगेल के आध्यात्मवादी दृष्टिकोण को अपनाकर शिक्षा को व्यक्तित्व के चैतन्य का अभिप्रकाशन जेंटीले ने माना है। वह समस्त विषयों का अध्यापन आध्यात्मिक उन्मेष के लिये ही अभीष्ट मानते हैं। प्रकृतिवादी और व्यवहारवादी जॉन ड्यूवी शिक्षा और जीवन का अत्यंत निकट संबंध मानते थे। ईश्वरवाद, आत्मवाद या अनुशासन को

छात्रों पर लादना उसे पसंद नहीं था। शिक्षा की प्रक्रिया को वह इतना आकर्षक और वृत्तियों को उपयोगी व सार्थक कराने वाला बनाना चाहते थे कि बच्चों पर भयोत्पादक बाह्य अनुशासन लादना न पड़े। शिक्षा और लोकतंत्र में गहरा संबंध मानकर समाजिकता की प्राप्ति पर उन्होंने बल दिया था। ह्वायूटहेड शिक्षा के द्वारा सतत् जागरूकता, सर्जनात्मकता, जीवनोत्साह, ओजस्विता आदि का संचार करना चाहते थे। बर्ट्रेंड रसल के अनुसार शिक्षा-तथ्य-संग्रह न होकर ऐसी प्रक्रिया है, जिससे मानव, समाज और विश्व में अपना वास्तविक स्थान समझ सके। राज्य और चर्च के आधिपत्य और नियंत्रण से शिक्षा विनिर्मुक्त रखनी चाहिए। शिक्षा में स्वातंत्र्य और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का समर्थन रसल ने किया है।

लोकतंत्र में शिक्षा के कार्य

लोकतंत्र व्यवस्था में शिक्षा के निम्नलिखित कार्य होते हैं–

1. कल्याणकारी राज्य की स्थापना

आज भारत की शिक्षा-व्यवस्था राज्याश्रित और पूंजीपतियों पर आश्रित है। अधिकांश राज्याश्रित शिक्षण-संस्थाएं संसाधन एवं अनुशासन के अभाव में निष्क्रियता के समीप पहुंच चुकी हैं, इसलिए वे गुणवत्ता से युक्त शिक्षा देने में असमर्थ हैं। इसी प्रकार पूंजीपतियों पर आश्रित सभी शिक्षण-संस्थाएं व्यावसायिक दृष्टि से धन लूटने में सक्रिय हैं, जो गरीबों की पहुंच से बाहर हैं। उनमें केवल संपन्न लोगों के बच्चे ही पढ़ सकते हैं। भारत की स्वाधीनता के 60 से अधिक वर्ष बीतने के पश्चात् भी ऐसे बच्चों की संख्या अत्यधिक है, जिन्होंने विद्यालय के द्वार तक नहीं देखे हैं। जो विद्यालय जाने का सामर्थ रखते हैं, उन्हें लॉर्ड मैकाले की परंपरा से चली आ रही अंग्रेजियत की शिक्षा प्रदान की जाती है। कुल मिलाकर उनमें भारतीयता की शिक्षा को प्रदान करने वाले शायद ही कोई विद्यालय मिले। यह बात नहीं कि भारतीयता की शिक्षा देने वालों का अभाव है। परन्तु इसलिए कि सभी अभिभावकों में ऐसी इच्छा-शक्ति एवं साहस नहीं है कि वे अपने बच्चों को सरकारी विद्यालयों में भारतीयता शिक्षा दिलावें। जब तक साधारण लोगों की इस मानसिकता में परिवर्तन नहीं आयेगा, तब तक विद्यालयों में कोई भी नई भारतीय शिक्षण-प्रणाली इस देश में विकसित नहीं हो सकती।

एक कल्याणकारी राज्य अपने नागरिकों के आर्थिक और सामाजिक कल्याण के संरक्षण और संवर्धन में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जिसमें सरकार की अवधारणा इन सिद्धांतों पर आधारित है अवसर की समानता, समान धन का वितरण और एक अच्छे जीवन के लिए न्यूनतम प्रावधानों का लाभ स्वयं को और असमर्थ लोगों के लिए।

डॉ. अम्बेडकर की लोकतंत्र में गहरी आस्था थी। वह इसे मानव के विकास के लिए एक स्वस्थ पद्धति मानते थे। उनकी दृष्टि में राज्य एक मानव-निर्मित संस्था है। इसका सबसे बड़ा कार्य–'समाज की आंतरिक अव्यवस्था और बाह्य अतिक्रमण से रक्षा करना है।' परन्तु वे राज्य को निरपेक्ष शक्ति नहीं मानते थे। उनके अनुसार–'किसी भी राज्य ने एक ऐसे अकेले समाज का रूप धारण नहीं किया, जिसमें सब कुछ समाहित हो जाये अथवा राज्य ही प्रत्येक विचार एवं क्रिया का स्रोत हो।' अनेक कष्टों को सहन करते हुए, अपने कठिन संघर्ष और कठोर परिश्रम से उन्होंने प्रगति की ऊंचाइयों का स्पर्श किया था। अपने गुणों और योग्यता के कारण ही संविधान सभा द्वारा संविधान निर्माण की प्रारूप-समिति जो कि सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समिति थी, उसके अध्यक्ष पद के लिये उन्हें मनोनीत किया गया।

प्रारूप समिति के अध्यक्ष के रूप में डॉ. अम्बेडकर ने महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। इतना ही नहीं, बल्कि उन्होंने सम्पूर्ण संविधान का निर्माण किया। भारत में कुछ ऐसे नेता हैं, जो कहते फिरते हैं कि संविधान निर्माण का कार्य संविधान निर्माण समिति के द्वारा किया गया था, डॉ. अम्बेडकर के द्वारा नहीं। इस भ्रमात्मक बात को संविधान निर्माण समिति के एक सदस्य टी.टी. कृष्णाम्माचारी ने संविधान सभा में 5 नवम्बर, 1948 को जो भाषण किया, उससे यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है। सदन का ध्यान आर्कषित करते हुए उन्होंने अपनी ऐतिहासिक तथ्यपूर्ण बात प्रस्तुत की थी।1

इतना ही नहीं, बल्कि संविधान सभा में सदस्यों द्वारा उठाई गई समस्त आपत्तियों, शंकाओं एवं जिज्ञासाओं का निराकरण उनके द्वारा बड़ी ही कुशलता से किया गया। उनके व्यक्तित्व और चिंतन का संविधान के स्वरूप पर गहरा प्रभाव पड़ा। उनके प्रभाव के कारण ही संविधान में समाज की अनुसूचित जातियों और जनजातियों के उत्थान के लिये विभिन्न संवैधानिक व्यवस्थाओं और प्रावधानों को उल्लेखित किया गया, जिसके परिणामस्वरूप भारतीय संविधान सामाजिक न्याय का एक महान् दस्तावेज बन गया।

2. शिक्षा से आर्थिक विकास

डॉ. अम्बेडकर ने कहा था–'एक लोकतांत्रिक सरकार लोकतांत्रिक समाज के स्वरूप की अपेक्षा रखती है। लोकतंत्र के औपचारिक ढांचे का कोई महत्त्व नहीं है और सामाजिक लोकतंत्र के अभाव में यह वास्तव में ही अनुपयुक्त हो जाएगा।' एक संदर्भ में डॉ. अम्बेडकर कहते हैं– 'राजनीतिक लोकतंत्र की सफलता के लिए उसका आर्थिक लोकतंत्र से गठबंधन आवश्यक है। आर्थिक लोकतंत्र का अर्थ है कि समाज के प्रत्येक सदस्य को अपने विकास की समान भौतिक सुविधाएं मिलें। लोगों के बीच आर्थिक विषमताएं अधिक न हों और एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का शोषण न कर सके। भारत जैसे देश में एक ओर घोर निर्धनता तथा दूसरी ओर विपुल संपन्नता के वातावरण में लोकतंत्रात्मक

राष्ट्र का निर्माण संभव नहीं है।' सामाजिक लोकतंत्र का तात्पर्य यह है कि जीवन में समानता, स्वतंत्रता एवं भाई-चारे के रास्ते पर चलकर इन गुणों को जीवन के मूल सिद्धांत बनाए जाएं। व्यावसायीकरण तथा निजीकरण ने ही शिक्षा-क्षेत्र को अपनी जकड़ में ले लिया है। बाजार में शिक्षा क्रय-विक्रय की वस्तु बनती जा रही है। इसे बाजार में निश्चित शुल्क से अधिक धन (Capitation fee) देकर खरीदा जा सकता है। परिणामतः शिक्षा में एक भिन्न प्रकार की जाति-प्रथा जन्म ले रही है, जो धन के बल पर आई.आई.टी., एम.बी.ए., सी.ए., एम.बी.बी.एस. आदि उपाधियों के लिये प्रवेश पा कर उच्च भावना से ग्रस्त होते हैं और दूसरी ओर धनाभाव के कारण बुद्धिमान एवं होनहार युवक प्रवेश से वंचित होकर हीन भावना से ग्रसित रहते हैं। यथार्थ यह है कि दोनों ही श्रेणियों के छात्र मानसिक कुंठाओं से ग्रस्त हैं। असमानता की खाई बढ़ रही है। सामाजिक असंतुलन और विषमता इसका ही परिणाम है।

यूनेस्को की एक रिपोर्ट के अनुसार शिक्षा का कार्य बहु-आयामी, वैश्विक, राष्ट्रीय तथा सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया के चक्के को तेजी से चलाना है। रिपोर्ट 2001 में कहा गया है–'विश्व के विकास की कार्य-सूची में सभी विषयों' जैसे–निर्धनता-उन्मूलन, स्वास्थ्य-संरक्षण, तकनीकी जानकारी का आदान-प्रदान, पर्यावरण का संरक्षण, लिंग-भेद समापन, लोकतांत्रिक प्रणाली को सुदृढ़ करना तथा शासन-प्रशासन में सुधार, सबके लिये न्याय की सुलभता, शिक्षा के माध्यम से इन सभी विषयों को एकात्मक भाव से देखा जाना चाहिए।'

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग का गठन 1948 ई. में किया गया था। आयोग को विश्वविद्यालय शिक्षा पर अपनी रिपोर्ट देनी थी। अगस्त, 1949 ई. में आयोग ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।

आयोग की मुख्य सिफारिशें

- प्रशासनिक सेवाओं के लिए विश्वविद्यालय से स्नातक की उपाधि आवश्यक नहीं हो।
- शिक्षा को समवर्ती सूची में रखा जाए।
- उच्च शिक्षा के तीन मुख्य उद्देश्य हों सामान्य शिक्षण, संस्कारी शिक्षण और शिक्षा व्यावसायिक हो।
- कृषि, वाणिज्य, विद्या, अभियांत्रिकी तथा प्राविधिकी और आर्युविज्ञान पर अधिक बल होना चाहिए।
- विश्वविद्यालयों की देख-रेख हेतु विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्थापना की जानी चाहिए।

1953 ई. में राधाकृष्णन् आयोग की सिफारिशों को क्रियान्वित करने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू.जी.सी.) की स्थापना की गयी। 1956 ई. में संसद के अधिनियम के द्वारा आयोग को स्वायत्तता प्रदान कर दी गई।

लोकतंत्रीय जीवन-मूल्यों का विकास करना

लोकतंत्र को आदर्श बनाने के लिए नैतिकता जीवन का आधार होना चाहिए एवं लोकतंत्रीय जीवन, मूल्यों का विकास करना मानसिक दृष्टि से लोकतंत्र का अर्थ मनुष्य के द्वारा मनुष्य के व्यक्तित्व में सकारात्मक आस्था होती है। क्षमता, सहिष्णुता, विरोधी के दृष्टिकोण के प्रति आदर की भावना, व्यक्ति की गरिमा का सिद्धांत ही वास्तव में लोकतंत्र का सार होता है। श्री अरविंद के अनुसार–'जब से जीवन-मूल्यों का शिक्षा से विछोह व भटकाव हो गया है, तब से देशवासी 'धर्मभ्रष्ट तथा लक्ष्यभ्रष्ट' हो गये हैं।' राधाकृष्णन् आयोग के अनुसार धर्म के प्रति, जो भारतीय दृष्टिकोण है, उसमें और धर्मनिरपेक्षता 'सर्व धर्म-समभाव' में कोई अंतर नहीं है। भारत में धर्म की शिक्षा का आधार आध्यात्मिक है, बिना आध्यात्मिकता के नैतिक-जीवन के मूल्यों का विकास संभव नहीं है। धार्मिकता से अभिप्राय आध्यात्मिकता माना जाए, अतः धार्मिक शिक्षा का अर्थ आध्यात्मिक शिक्षा होना चाहिए। राधाकृष्णन् आयोग ने धार्मिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास के लिए, जो सुझाव दिये हैं, वह इस प्रकार हैं–

सभी शिक्षण संस्थाओं में कुछ मिनटों के लिए छात्र मौन रहकर ध्यान करें और फिर इसके बाद शिक्षण कार्य प्रारंभ हो। इस कार्य में शिक्षक भी सम्मिलित हों।

विभिन्न धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से विभिन्न ग्रंथों जैसे–गीता, बाइबिल, कुरान, गुरुग्रंथ साहिब, धम्मपद आदि के सारभूत अंश छात्रों का पढ़ाए जाएं।

मुदालियर आयोग (52-53) के द्वारा विद्यालयों में सामूहिक प्रार्थना और नैतिक जीवन के लिए प्रेरक प्रसंगों को भी पढ़ाया जाए। जिससे परिवार, समाज और विद्यालय का परिवेश बालकों के नैतिक एवं चरित्र के विकास में सहायक सिद्ध हो। नैतिकता तथा आध्यात्मिकता को छात्रों के चरित्र-निर्माण में सहायक होना चाहिए।

कोठारी आयोग (64-66) के अनुसार नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास के लिए 'सर्व धर्म-समभाव' की शिक्षा छात्रों को दी जानी चाहिए। यहां धार्मिक शिक्षा का तात्पर्य नैतिक शिक्षा से है, जिससे कि वे विभिन्न वर्गों की अच्छी बातों को ग्रहण करके अपने चरित्र का निर्माण कर सकें और देश के उत्थान में योगदान दे सकें। समाज-रचना में नैतिक मूल्यों की आवश्यकता एवं अपरिहार्यता के साथ-साथ डॉ. अम्बेडकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं आधुनिक तकनीक के भी भारी समर्थक थे, क्योंकि वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं आधुनिक तकनीक जाति और धर्म के बंधनों को ढीला एवं लचीला कर समतावादी समाज के निर्माण में सहयोग करती है।

शिक्षा के द्वारा मानवाधिकार-संरक्षण

10 दिसंबर 1948 को संयुक्त राष्ट्र संघ की समान्य सभा के द्वारा मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा को स्वीकृति प्रदान

की गई। इस ऐतिहासिक कार्य के बाद ही सभा ने भी सदस्य देशों से पुनरावेदन किया कि वे इस घोषणा का प्रचार-प्रसार और पालन करें। देशों अथवा प्रदेशों की राजनीतिक स्थिति पर आधारित भेदभाव का विचार किए बिना, विशेषत: विद्यालयों और अन्य शिक्षा संस्थाओं में इसके प्रचार-प्रसार, प्रदर्शन, पठन-पाठन और व्याख्या का प्रबंध करें।

मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा, अनुच्छेद-26, शिक्षा का अधिकार

1. प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा का अधिकार है। शिक्षा कम से कम प्रारंभिक और बुनियादी अवस्थाओं में नि:शुल्क होगी। प्रारंभिक शिक्षा अनिवार्य होगी। टेक्निकल, यांत्रिक और पेशों-संबंधी शिक्षा साधारण रूप से प्राप्त होगी और उच्चतर शिक्षा सभी को योग्यता के आधार पर समान रूप से उपलब्ध होगी।
2. शिक्षा का उद्देश्य होगा, मनुष्य के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास और मानवाधिकारों तथा बुनियादी स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान की पुष्टि। शिक्षा द्वारा राष्ट्रों, जातियों, अथवा धार्मिक समूहों के बीच आपसी सद्भावना, सहिष्णुता और मैत्री का विकास होगा और शांति बनाए रखने के लिए संयुक्त राष्ट्रों के प्रयत्नों को आगे बढ़ाया जाएगा।
3. माता-पिता को सबसे पहले इस बात का अधिकार है कि वह चयन कर सकें कि किस प्रकार की शिक्षा उनके बच्चों की दी जाएगी।

भारत में मानवाधिकार-शिक्षा

भारत के संविधान में सामाजिक व आर्थिक अधिकारों का सृजन राज्य के नीति निर्देशक तत्त्वों के रूप में समाहित किए गए हैं। संविधान में शिक्षा का अधिकार व प्राथमिक शिक्षा अधिनियम-2009 द्वारा सर्व शिक्षा अभियान समान व अनिवार्य शिक्षा प्रदान किए जाने का संकल्प मानवाधिकार के रूप में परिलक्षित होता है, हालांकि इसे लागू करने में जनसंख्या का दबाव एक चुनौती के रूप में सामने है।

देश में महिलाओं के प्रति बढ़ती हिंसा को मद्देनजर रखते हुए यूजीसी ने सभी पाठक्रमों में लैंगिक सरोकारों को सम्मिलित करने की आवश्यकता बताई है और इस संबंध में सभी विश्वविद्यालयों को सूचित किया गया है। उन्होंने कहा कि महिला-अध्ययन को बढ़ावा देने के लिए यूजीसी ने विशेष योजना के माध्यम से देश में 158 महिला अध्ययन केंद्र खोले हैं, जिनमें से 82 केंद्र विश्वविद्यालयों में और 76 केंद्र महाविद्यालयों में है। उसमें कहा गया है कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या-ढांचा 2005, लिंगभेद को पाठ्यचर्या के सभी क्षेत्रों को प्राथमिकता दी गई है और इसमें लैंगिक-शिक्षा स्कूल-स्तर पर बच्चों की पढ़ाई का प्रमुख हिस्सा बनाने की परिकल्पना की गई है। लैंगिक सरोकारों को राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (एनसीईआरटी) द्वारा तैयार की गई पाठ्यचर्याओं और पाठ्य पुस्तकों में समाहित किया गया है। केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (सीबीएसई) से संबंधित स्कूलों और कई राज्य सरकार इसका उपयोग कर रही हैं। सीबीएसई ने शैक्षिक सत्र 2013-14 में ग्यारहवीं और बारहवीं कक्षा के लिए मानवाधिकार और लैंगिक अध्ययन पर एक वैकल्पिक पाठ्यक्रम देने का निर्णय लिया है। इस संदर्भ में डॉ. अम्बेडकर का कथन अत्यंत प्रासंगिक है, वह कहते हैं-''एक सफल क्रांति के लिए सिर्फ असंतोष का होना पर्याप्त नहीं है। इसके लिए न्याय एवं राजनीतिक और सामाजिक अधिकारों में गहरी आस्था बहुत आवश्यक है।'

समानता के लिए शिक्षा

लोकतंत्र केवल शासन के रूप तक ही सीमित नहीं है, वह समाज का एक संगठन भी है। सामाजिक आदर्श के रूप में लोकतंत्र वह समाज है, जिसमें कोई विशेषाधिकारयुक्त वर्ग नहीं होता और न जाति, धर्म, वर्ण, वंश, धन, लिंग आदि के आधार पर मनुष्य, मनुष्य के बीच भेदभाव किया जाता है। वास्तव में इस प्रकार का लोकतंत्रीय समाज ही लोकतंत्रीय राज्य का आधार हो सकता है।

समानता का अधिकार संविधान की प्रमुख गारंटियों में से एक है। यह अधिकार संविधान के अनुच्छेद 14 से 16 में सन्निहित हैं, जिसमें सामूहिक रूप से कानून के समक्ष समानता तथा गैर-भेदभाव के सामान्य सिद्धांत शामिल हैं, तथा अनुच्छेद 17-18 जो सामूहिक रूप से सामाजिक समानता के दर्शन को आगे बढ़ाते हैं। ये अनुच्छेद कानून के समक्ष समानता की गारंटी देते हैं, इसके साथ ही भारत की सीमाओं के अंदर सभी व्यक्तियों को कानून का समान संरक्षण प्रदान करता है।

नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा-विधेयक-2009

- नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा-विधेयक-2009, भारतीय संसद के द्वारा सन् 2009 में पारित शिक्षा-संबंधी एक विधेयक है। इस विधेयक के पास होने से बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का मौलिक अधिकार मिल गया है, जिसके अनुसार 6 से 14 साल के बच्चों को मुफ्त शिक्षा उपलब्ध कराई जाएगी।
- निजी स्कूलों को 6 से 14 साल तक के 25 प्रतिशत गरीब बच्चे मुफ्त पढ़ाने होंगे। इन बच्चों से फीस वसूलने पर दस गुना जुर्माना देना होगा। इस शर्त के नहीं मानने पर मान्यता रद्द हो सकती है। मान्यता निरस्त होने पर यदि स्कूल चलाया, तो एक लाख और इसके बाद रोजाना 10 हजार जुर्माना लगाया जायेगा।
- विकलांग बच्चों की मुफ्त शिक्षा के लिए उम्र बढ़ाकर 18 साल कर दी गई है।
- बच्चों को मुफ्त शिक्षा प्रदान कराना

राज्य और केंद्र सरकार का उत्तरदायित्व होगा।

- इस विधेयक में दस आवश्यक लक्ष्यों को पूरा करने की बात कही गई है। इसमें मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराने, शिक्षा प्रदान कराने का उत्तरदायित्व राज्य सरकार पर होने, स्कूल पाठ्यक्रम देश के संविधान के दिशानिर्देशों के अनुरूप एवं सामाजिक उत्तरदायित्व पर केंद्रित होने और एडमिशन प्रक्रिया में लालफीताशाही कम करना तक सम्मिलित है।
- प्रवेश के समय अनेक स्कूल केपिटेशन फीस की मांग करते हैं और बच्चों और माता-पिता को साक्षात्कार की प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। प्रवेश की इस प्रक्रिया को बदलने का वादा भी इस विधेयक में किया गया है। बच्चों की स्क्रीनिंग और अभिभावकों की परीक्षा लेने पर 25 हजार रुपये का जुर्माना देना होगा। इसको दोहराने पर दण्ड 50 हजार रुपये किया जाएगा।
- शिक्षक ट्यूशन पढ़ाने के लिए प्रतिबंधित होंगे।

इस विधेयक की आलोचना में, समानता से संबंधित कुछ सुझाव

- मुफ्त और अनिवार्य की अपेक्षा आवश्यक है, समान शिक्षा प्रदान करना। यह अच्छा होता कि यदि सरकार मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का बिल लाने पर जोर देने की अपेक्षा सामान्य स्कूल का बिल लाने पर ध्यान केंद्रित करती। सरकार यह क्यों नहीं घोषणा करती कि देश का प्रत्येक बच्चा एक ही प्रकार के स्कूल में पढ़ने जाएगा और पूरे देश में एक ही प्रकार का पाठ्यक्रम होगा।
- मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा के अंतर्गत मात्र 25 प्रतिशत सीटों पर ही समाज के कमजोर वर्ग के छात्रों को प्रवेश मिलेगा, अर्थात् शिक्षा के माध्यम से समाज में असमानता की खाई को बांटने का जो महान स्वप्न देखा जाता है, वह अब भी पूरा नहीं होगा।

कोठारी आयोग भारत का ऐसा पहला शिक्षा आयोग था, जिसने अपनी रिपोर्ट में सामाजिक परिवर्तनों की दृष्टि से कुछ ठोस सुझाव दिए थे। आयोग के अनुसार समान स्कूल के नियम पर ही एक ऐसी राष्ट्रीय व्यवस्था तैयार हो सकती है, जहां सभी वर्ग के बच्चे एक साथ पढ़ेंगे। अगर ऐसा नहीं हुआ, तो समाज के उच्च वर्गों के लोग सरकारी स्कूल से भागकर प्राइवेट पब्लिक स्कूलों का रुख करेंगे और इससे पूरी शिक्षा-प्रणाली ही छिन्न-भिन्न हो जाएगी। इस संदर्भ में आयोग ने, जो सुझाव दिए, वे निम्नलिखित हैं–

1. शिक्षा के अनिवार्य अंग के रूप में समाज-सेवा और कार्य-अनुभव, जिसमें हाथ से काम करने तथा उत्पादन-अनुभव सम्मिलित हों, आरंभ किए जाएं।
2. माध्यमिक शिक्षा को व्यावसायिक बनाने पर बल दिया जाए।
3. शिक्षा के पुनर्निर्माण में कृषि, कृषि में अनुसंधान तथा इससे संबंधित विज्ञानों को उच्च प्राथमिकता दी जाए।
4. विश्वविद्यालयों में एक छोटी-सी संस्था ऐसी बनायी जाए, जो उच्चतम अंतर्राष्ट्रीय मानकों को प्राप्त करने का उद्देश्य रखती हो।

माध्यमिक शिक्षा आयोग के द्वारा शैक्षणिक उद्देश्य के संबंध में निम्नलिखित सिफारिशें की गई हैं–

लोकतांत्रिक नागरिकता का विकास

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के द्वारा अपने आप को एक लोकतांत्रिक गणराज्य बनाने का निर्णय लिया गया था, जिसमें नागरिकों को आदर्श बनाए रखने और लोकतांत्रिक सामाजिक व्यवस्था के मूल्यों का अभ्यास करने के लिए प्रशिक्षित किया जाना है। यह अनुशासन, सहनशीलता, देशभक्ति, सहयोग, विचार के लिए समान अवसर, भाषण और लेखन के गुण, नागरिकता का सार छात्रों के मन में बार-बार बैठाकर और विकसित करना चाहिए। यह केवल तब संभव हो सकता है, जब माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार, छात्रों में इन सभी गुणों का विकास करना चाहिए। इन गुणों के साथ नागरिकों को आदर्श के रूप में विकसित किया जा सकता है। भारतीय लोकतंत्र को सफल बनाने में माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्यों के अनुसार देश में आदर्श लोकतांत्रिक नागरिकों का विकास होना चाहिए।

व्यावसायिक क्षमता में सुधार

देश की तात्कालिक आवश्यकताओं में से एक अपने लोगों की उत्पादक क्षमता के लिए राष्ट्रीय आय में वृद्धि करना है। इसके लिए शिक्षा का उद्देश्य उत्पादकता या युवा छात्रों में व्यावसायिक दक्षता बढ़ा होना चाहिए। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, माध्यमिक शिक्षा आयोग ने शारीरिक श्रम की गरीमा को बढ़ावा देने के लिए एवं उद्योग और प्रौद्योगिकी के विकास हेतु तकनीकी कौशल को बढ़ावा देने के लिए सिफारिश की थी। इसलिए माध्यमिक शिक्षा को विशुद्ध रूप से सैद्धांतिक शिक्षा-प्रणाली से मुक्त किये जाने पर बल दिया गया है और कृषि, तकनीकी, वाणिज्यिक एवं अन्य व्यावहारिक पाठ्यक्रमों को रखा गया है।

नेतृत्व के लिए शिक्षा

माध्यमिक शिक्षा बहुसंख्यक छात्रों के लिए अन्तिम पड़ाव है। इसलिए स्कूली शिक्षा के अंत में प्रत्येक छात्र को स्वतंत्र रूप से विभिन्न व्यवसायों में प्रवेश करने के लिए सक्षम होना चाहिए। छात्रों को सामाजिक, राजनीतिक, औद्योगिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में माध्यमिक विद्यालय में होने वाले विशेष समारोहों में नेतृत्व को संभालने के लिए सक्षम बनाना चाहिए।

व्यक्तित्व के विकास का उत्तरदायित्व

माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य छात्रों के व्यक्तित्व का विकास करना, होना चाहिए। छात्रों की रचनात्मक ऊर्जा और उसकी उचित अभिव्यक्ति का पता लगाना चाहिए। उस ऊर्जा को रचनात्मक और मूल्यवान बनाने के लिए छात्रों को प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। इतना ही नहीं, बल्कि उन्हें अपनी सांस्कृतिक विरासत की रक्षा और संरक्षण के लिए प्रशिक्षण भी प्रदान किया जाना चाहिए। छात्र के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना माध्यमिक शिक्षा का एक अनिवार्य उद्देश्य है।

सर्व शिक्षा-अभियान

सर्व शिक्षा-अभियान भारत सरकार का एक प्रमुख कार्यक्रम है, जिसका आरंभ श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा एक निश्चित समयावधि की पद्धति से प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण को प्राप्त करने के लिए किया गया था। जैसा कि भारतीय संविधान के 86वें संशोधन द्वारा निर्देशित किया गया है, जिसके अंतर्गत 6-14 साल के बच्चों (2001 में अनुमानित मिलियन) को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के प्रावधान को मौलिक अधिकार बनाया गया है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य सन् 2010 तक संतोषजनक गुणवत्ता वाली प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण को प्राप्त करना है। एसएसए (SSA) में मुख्य कार्यक्रम हैं, इसमें आईसीडीएस (ICDS), आंगनवाड़ी, केजीबीवीवाई (KGBVY) भी सम्मिलित हैं। कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजना का आरंभ हुआ, जिसके अंतर्गत समस्त लड़कियों को प्राथमिक शिक्षा देने का स्वप्न देखा गया था, बाद में यह योजना एसएसए के साथ विलय हो गई।

इस कार्यक्रम के अनुसार उन बस्तियों में नए स्कूल बनाने का प्रयास किया जाता है, जहां स्कूली शिक्षा की सुविधा नहीं है और अतिरिक्त कक्षा, शौचालय, पीने का पानी, रख-रखाव-अनुदान और स्कूल-सुधार-अनुदान के माध्यम से वर्तमान स्कूलों के बुनियादी ढांचे में विकास करना है। जिन वर्तमान स्कूलों में अपर्याप्त शिक्षक हैं, उनमें अतिरिक्त शिक्षक मुहैया कराना है, जबकि वर्तमान शिक्षकों की क्षमता को व्यापक प्रशिक्षण, विकासशील शिक्षण, अन्य सामग्री के लिए अनुदान और ब्लॉक एवं जिला-स्तर पर एक समुदाय (Cluster) पर अकादमिक सहायता संरचना को सशक्त बनाने के लिए अनुदान से सुदृढ़ बनाया जा रहा है। सर्व शिक्षा-अभियान, जीवन कौशल सहित गुणवत्ता युक्त प्रारंभिक शिक्षा प्रदान करता है। सर्व शिक्षा-अभियान के द्वारा लड़कियों और विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों पर विशेष रूप से ध्यान केंद्रित किया जाता है। सर्व शिक्षा-अभियान, डिजिटल अंतराल को समाप्त करने के लिए कंप्यूटर शिक्षा भी प्रदान करने का प्रयास करता है। बच्चों की उपस्थिति कम होने के कारण मध्याह्न-भोजन का आरंभ भी किया गया था। अच्छे परिणामों को प्राप्त करने के लिए सर्व शिक्षा-अभियान के परिव्यय को 2005-06 में 7,156 करोड़ रुपये से बढ़ाकर 2006-07 में 10,004 करोड़ रुपये तक कर दिया गया। साथ ही 5,00,000 अतिरिक्त क्लास रूम का निर्माण और 1,50,000 अतिरिक्त शिक्षकों की नियुक्ति करना लक्ष्य रखा था। वर्ष 2006-07 के मध्य शिक्षा उप-कर के माध्यम से राजस्व से प्रारंभिक शिक्षा-कोष के लिए 8,746 करोड़ हस्तांतरण करने का निर्णय किया गया था।

राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान

राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा-अभियान (RMSA) का उद्देश्य है, माध्यमिक शिक्षा का कक्षा 8 से 10 तक का विस्तार करना तथा उसका गुणात्मक स्तर पर सुधार करना। प्रत्येक स्थान पर 5 किलोमीटर व्यास के क्षेत्र में माध्यमिक विद्यालय (कक्षा 10 तक) की उपलब्धता सुनिश्चित कर, माध्यमिक शिक्षा को देश के हर कोने में ले जाया जाएगा। राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा-अभियान (RMSA), माध्यमिक शिक्षा के वैश्वीकरण (USE) का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए भारत सरकार का यह नवीनतम प्रयास है।

लाखों बच्चों को प्रारंभिक शिक्षा देने के लिए सरकार द्वारा स्थापित राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा-अभियान (RMSA) काफी सीमा तक सफल रहा है और इसने पूरे देश में माध्यमिक शिक्षा के आधारभूत ढांचे को शक्तिशाली बनाने की आवश्यकता उत्पन्न कर दी है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने यह बात ध्यानपूर्वक देखी है तथा अब वह 11वीं योजना के अंतर्गत 20,120 करोड़ रुपये के कुल व्यय पर राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा-अभियान (RMSA) नामक एक माध्यमिक शिक्षा योजना लागू करने पर विचार कर रहा है।

मानव-संसाधन विकास मंत्रालय के अनुसार सर्व शिक्षा-अभियान सफलता पूर्वक लागू होने से बड़ी संख्या में छात्र उच्च प्राथमिक कक्षाओं में उत्तीर्ण हो रहे हैं तथा माध्यमिक शिक्षा के लिए जबरदस्त मांग उत्पन्न कर रहे हैं।

माध्यमिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण 'यूनिवर्सलाइजेशन ऑफ सेकंडरी एजुकेशन), (USE) की चुनौती का सामना करने के लिए माध्यमिक शिक्षा की परिकल्पना में आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता है। इस संबंध में मार्गदर्शक तत्व क्रमशः इस प्रकार हैं-सामाजिक न्याय के लिए समानता की प्रासंगिकता, विकास, पाठ्यक्रम एवं ढांचागत पहलू। माध्यमिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण अभियान समानता की ओर अग्रसर होने का अवसर प्रदान करता है। आम स्कूल की परिकल्पना प्रोत्साहित की जाएगी। यदि इस प्रणाली में ये मूल्य समाहित किए जाते हैं, तो अनुदानरहित निजी विद्यालयों सहित, सभी प्रकार के विद्यालय भी समाज के निम्न वर्ग और गरीबी रेखा से नीचे (BPL) के परिवारों के बच्चों को उचित अवसर देना सुनिश्चित कर माध्यमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण (USE) के लिए योगदान देंगे।

लोकतांत्रिक नागरिकता के लिए शिक्षा

जब हमारा भारत स्वतंत्र हुआ था, तब डॉ. ज़ाकिर हुसैन ने शिक्षा की आवश्यकता पर बहुत बल दिया था। मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद को भारत के लोकतंत्र का प्रथम शिक्षामंत्री बनाया गया था। उन्होंने देश में शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए कई नीतियां निर्धारित की थीं। उन नीतियों का उद्देश्य भारत को प्रगति के पथ पर तीव्र गति से आगे बढ़ाना था। जब देश का लोकतंत्र उन्नति के रास्ते पर आगे बढ़ेगा, तभी शिक्षा का तीव्र गति से विकास भी हो सकेगा।

भारत में व्याप्त निरक्षरता और अज्ञान के अंधकार को मिटाने के लिए आज भी शिक्षा के प्रकाश की बहुत आवश्यकता है। शिक्षा से मनुष्य को, जो ज्ञान, विवेक और समझदारी मिलती हैं, उनकी पग-पग पर मनुष्य को आवश्यकता पड़ती है। दैनिक जीवन के साधारण और शैक्षिक कार्यों में शिक्षा हमारा मार्ग प्रशस्त करती है। शिक्षा की आवश्यकता आज समाज के प्रत्येक वर्ग के व्यक्ति को है। संपन्न प्रकार की जातियां शिक्षा का उपयोग अपनी उन्नति और खुशहाली के लिए करती आई हैं, जबकि विपन्न या निम्न-स्तर की जातियों को उच्च श्रेणी के समाज ने शिक्षा-दीक्षा के क्षेत्र में अधिक आगे बढ़ने ही नहीं दिया है। इस दृष्टि से भारतीय लोकतंत्र सशक्त नहीं कहा जा सकता। सशक्त लोकतंत्र बनाने के लिए भारत में शिक्षा का प्रचार-प्रसार करने की आवश्यकता है। निम्न जातियों को हमेशा दबाकर रखा गया और उन पर भांति-भांति के अत्याचार किए गए हैं।

जब व्यक्ति पढ़-लिखकर साक्षर एवं शिक्षित हो जाता है, तब वह अपने और अपनी जाति के लोगों के ऊपर होने वाले अत्याचार का सामना तत्परता से करता है। शिक्षा का तात्पर्य ढेर सारी पुस्तकों का भार विद्यार्थियों के मन और मस्तिष्क पर लाद देना नहीं है, बल्कि शिक्षा का अर्थ प्रत्येक विद्यार्थी को बेहतर या श्रेष्ठ जीवन जीने योग्य बनाना है। इसलिए शिक्षा के सैद्धांतिक तत्त्वों के साथ व्यावहारिक तत्त्वों का भी योग होना चाहिए, ताकि प्रत्येक विद्यार्थी अपने जीवन की कठिनाईयों का अच्छी प्रकार से सामना कर सके। सही शिक्षा के अभाव में आज का युवक अपने जीवन के यथार्थ लक्ष्य से भटक गया है। जिस कारण वह अनेक प्रकार की बुरी आदतों और कुसंगत का शिकार हो गया है।

भारत के नागरिकों का अपेक्षित योगदान

भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम का सादा जीवन, उच्च विचार तथा कठोर परिश्रम के उद्देश्य को मानने वाले महापुरुष का कहना है कि--''कम से कम दो गरीब बच्चों को आत्मनिर्भर बनाने के लिये उनकी शिक्षा में मदद करो।'' अपनी संस्कृति और उसके जीवन-दर्शन का सम्मान किसी भी देश के नागरिकों का धर्म भी है और कर्तव्य भी। आज की पीढ़ी में देखने में आ रहा है कि उसमें देश की गरिमा और स्वाभिमान का भाव मानो है ही नहीं। हमारे देश के कर्णधारों के हृदय में अपनी जन्म-भूमि के प्रति जो नैसर्गिक स्वाभिमान होना चाहिए, वह पाया नहीं जाता, लेकिन उन संस्कारों की अनुपस्थिति विचारणीय भी है और चिंताजनक भी।

मातृभूमि के प्रति सम्मान और देश के लिए स्वाभिमान के राष्ट्रवादी विचारों की प्रेरणा, उन्हें घर-परिवार से मिलने वाले संस्कारों का भाग होना चाहिए। ऐसे संस्कारों से संपन्न जीवन ही हमारी भावी पीढ़ी को कर्तव्य-परायण एवं सुनागरिक बना सकता है। जिस प्रकार कोई बच्चा अल्प आयु में अपने अपने घर के संस्कारों और रीति-रिवाजों से जुड़ जाता है, उसी प्रकार पारिवारिक संस्कारों में अगर राष्ट्रधर्म की शिक्षा को भी जोड़ लिया जाए, तो बचपन से ही उनके मन में राष्ट्र में राष्ट्रधर्म की सोच को प्रेरणा मिलेगी। कितना सुखद होगा, अगर कुछ समय निकालकर घर के बड़े बुजुर्ग और अभिभावक अपने बच्चों को कभी तिरंगे के मान एवं राष्ट्रगीत के सम्मान का भी पाठ पढ़ायें। देश के नाम मात्र शिकायतों और आलोचनाओं की बात न हो, कम से कम बच्चों से तो नहीं। सकारात्मक विचारों के साथ बच्चों को उत्तरदायी नागरिक बनने और अपने कर्तव्यों के प्रति प्रतिबद्धता की भी सीख घर से ही दी जाये। शहीदों और राष्ट्रीय चिन्हों के प्रति सम्मान से जुड़ा संवाद भी हमारी दिनचर्या में शामिल हो।

भारत में व्याप्त निरक्षरता और अज्ञान के अंधकार को मिटाने के लिए आज भी शिक्षा के प्रकाश की बहुत आवश्यकता है। शिक्षा की आवश्यकता आज समाज के प्रत्येक वर्ग के व्यक्ति को है।

राष्ट्रहित की सोच आदर्श एवं कर्त्तव्यपरायणता के बीज घर से ही बच्चों के मन में बोए जाएं, तो ये भाव उनके व्यक्तित्त्व में पूर्ण रूपेण समाहित हो जायेंगे। दादी-नानी बच्चों को देश के लिए अपना जीवन न्यौछावर करने वाली महान विभूतियों की कहानियां सुनाएं। बच्चों के सामने मातृभूति के मान का गौरव गान हो। प्रतिदिन के जीवन में सम्मिलित यह छोटे-छोटे परिवर्तन बच्चों की सोच में दिशा मोड़ने में काफी अहम् साबित हो सकते हैं, जो हमारे बच्चों में देशानुराग और आत्म-बलिदान की चेतना को जन्म देंगे। अपने परिवार की नई पीढ़ी को राष्ट्रीय धर्म के मूल्यों का बोध कराना प्रत्येक परिवार का उत्तरदायित्व है, क्योंकि ये ही जीवन-मूल्य उनमें भारतीय होने के गौरव और स्वाभिमान के भाव पैदा करेंगे।■

(लेखिका दयाल बाग डीम्ड यूनिवर्सिटी में पढ़ाती हैं)

अछूत

■ मुल्क राज आनन्द

आखिरकार डोल कुएं की जगत पर आ गया। किन्तु ब्राह्मण अपने पेट की हलचल तथा उसके अन्दर की परिवर्तनशील दशाओं में उलझा हुआ क्षणभर को बेसुध-सा देखता रहा। ताप की एक विचित्र लहर उसकी भुजाओं से होती हुई उसके पेट के गर्त में उतर रही थी। आज महीनों बाद उसने अपनी टुण्डी के ऊपर एक सनसनी-सी अनुभव की, जिसने पीड़ा हरण के सूचक-रूप उसे आह्लादित किया। तभी दुर्भाग्य से एक तीक्ष्ण दर्द उसकी कमर की दाईं ओर सुई चुभने की तरह निकल गया और उसकी फिर वही सदा की-सी उत्सुक तथा आकुल चेष्टा बन गई।

''पंडितजी, मैं पहले आयी थी,'' गुलाबो धोबन ने सहसा कहा और अपने-आप में मग्न ब्राह्मण को खलबला दिया।

उसने उसकी ओर भर्त्सना की दृष्टि से देखा उसके धारण किए हाव-भाव की ओर ध्यान भी नहीं दिया, जिसकी ओर ध्यान देने से उसकी सफल सिद्धि होती।

''नहीं, मैं पहले आया था,'' एक अकिंचन छोटा लड़का चिल्लाया।

''तेरे से पहले तो मैं आया था,'' कोई दूसरा चिल्लाया।

और कुएं की ओर आम भग्गी पड़ गई। साधारणतया इससे रुष्ट होकर पुजारी पानी को उन सबके ऊपर डाल देता, किन्तु जैसे उसके पास प्रार्थना सुनने को कान थे, वैसे ही एक सुन्दर रूप परखने को आंख भी थी। सोहिनी कुएं की ओर बढ़ती भीड़ से दूर, शान्त, धीर बैठी थी। पण्डित ने भंगी की लड़की को पहचाना। उसने उसे पहले देखा था। शहर की गलियों में टट्टियां साफ करने जाती हुई की ओर ध्यान दिया था—नवयुवती जिसके संकुल उरोज अपने काले टुनटुनों-सहित उसके मलमल के कुरते में सुस्पष्ट स्फुरित होते थे, जिसकी विस्मय-भरी भोली चितवन, उसके शारीरिक असामर्थ्य से कठिनीकृत तथा मानसिक दुर्बलता से निर्मोहित किन्तु श्रद्धालु भक्तों पर प्राप्त प्रभुत्व के कारण निर्लज्ज हृदय के एकमात्र मृदु तार को छू देती थी। और उसकी दयालु प्रवृत्ति जागृत हुई।

''यहां आ री, लख्खा की लौंडिया!'' उसने कहा, ''तैंने धैर्य धारण किया है और शास्त्रों में लिखा है कि धैर्य का फल मीठा होता है। हटो बे भौंकते हुए कुत्तो! रास्ता छोड़ो!''

''परन्तु, पण्डितजी...'' इस महान् कृपा को लेने में झिझकती हुई सोहिनी बोली-यह नहीं कि उसने ब्राह्मण की कुदृष्टि को भांप लिया था, वरन् अपने से पहले आए हुओं के डर के मारे।

''अरी! आ भी,'' पंडित ने आग्रह किया। उसके पेट में टट्टी के दबाव का प्रारम्भ होने से खलबली तथा सुन्दरी युवती पर अनुग्रह करने की भावना से सनसनी मच रही थी।

लड़की डरती हुई आगे बढ़ी और अपना घड़ा चबूतरे के नीचे रख दिया। पुजारी ने बड़े यत्नपूर्वक डोल उठाया। सोहिनी के सामीप्य की मादकता से सराबोर उतप्तावस्था में तो थोड़ी देर तो वह पानी ठीक डालता रहा। फिर उसकी स्वाभाविक निर्बलता लौट आई। उससे पानी बिखर गया और बर्हिष्कृत लोग आधे भीगे, आधे सूखे इधर-उधर भागने लगे।

''हटो बीच में से!'' सोहिनी का घड़ा भरते-भरते वह चिल्लाया। वह अपनी दुर्बलता को भर्त्सना का आवरण उढ़ा रहा था। आखिरकार घड़ा पौना भर गया।

''यह तेरे लिए पर्याप्त होगा?'' खाली डोल हटाते हुए विजयोल्लास में पंडित ने पूछा।

''हां, पण्डितजी!'' घड़े को सिर पर उठाने के लिए बाहर से पोंछते हुए, लाज से सिर झुकाए, सोहिनी ने मन्द स्वर में कहा।

'सुन! मंदिर में हमारे घर का सहन बुहारने तू क्यों नहीं आती?'' लड़की जाने लगी तो ब्राह्मण ने पुकारा। ''अपने बाप से कह देना कि आज से तुझे भेजा करें,'' और वह कुछ लज्जित-सा देर तक उसकी ओर देखता रहा। उसके रुधिर में कामुकता का प्रवाह हो उठा था, जिसके विरुद्ध उसकी उग्र कुलीनता युद्ध कर रही थी।

''आज अवश्य आना।'' उसने दृढ़तापूर्वक कहा, कहीं उसका आदेश समझने में कुछ कमी न रह जाए।

सोहिनी उसके अनुग्रह के लिए कृतज्ञ थी। उसने लजाते हुए सिर से हां की सूचना दी और अपने घर को चल दी–बायां हाथ कमर में रखे, दाएं से घड़ा पकड़े, एक गीत की लय के समान संतुलित पग रखती हुई। धोबन ने क्रोध से जलती हुई आंखों से उसे घूरा और औरों के साथ कुएं की ओर बढ़कर एक नवागन्तुक से अनुनय-विनय करने लगी।

यह लछमन था जो जन्म से ब्राह्मण होते हुए भी दूसरे सवर्ण हिन्दुओं के यहां रोटी बनाता था, बरतन मांजता था, पानी भरता था तथा अन्य छोटे छोटे घरेलू काम करता था। वह छब्बीस वर्ष का युवक था। उसकी आकृति में कुक्रशता के साथ कुलीनता से गिरे ब्राह्मण की मेघा भी थी। उसके कंधे पर पानी ढोने का बहंगा रखा था। उसे धीरे-से पृथ्वी पर रख, वह कुएं पर चढ़ गया, पण्डितजी को हाथ जोड़कर 'जय देव' की तथा सम्मानपूर्वक उन्हें और पानी खींचने के काम से छुट्टी दी। कुएं में सरलता से डोल डालते-डालते उसने घर की ओर लौटती सोहिनी को कनखियों से देखा। उसने भी उस पर पहले ध्यान दिया था और अपने रुधिर में उत्तेजना अनुभव की थी–प्रेम की एक उतप्त भावना, आत्मा की वह विचित्र प्रभावोत्पादक लालसा जो पहले आशंका में, फिर आशा में, और फिर शारीरिक तथा मानसिक आवेश की घनीभूत उग्रता में, किसी दूसरे से तादात्म्य प्राप्त करना चाहती है। जब वह पानी लेने कुएं पर आती और वह वहां होता तो वह उससे मामूली छेड़-छाड़ भी करता था, जिसका उत्तर वह मन्द मुस्कान तथा अपने सतेज नेत्रों की भाव-भंगीमा से देती थी। और आम भारतीय प्रेमी की भाषा में उसका कथन था कि वह 'उस पर मरता है'। पण्डित ने उसकी ताक-झांक भांप ली। लजा कर लछमन ने आंखे हटा लीं और तुच्छ सेवकों की स्वाभाविक दास्य भावना के साथ अपने हाथ का काम निबटाने लगा। उसकी बलिष्ठ भुजाएं जल्दी-जल्दी भरे हुए डोल ऊपर खींच रही थीं। पहले उसने पुजारी जी का लोटा भरा, फिर गुलाबो का घड़ा, और फिर औरों की सहायता करने लगा। सोहिनी का चित्र उसके मन से ओझल हो गया।

सोहिनी अपनी कच्ची कुटिया में अब स्पष्ट दीख रही थी जहां उसे खाना पकाना था। उसका पिता अब भी अपने बेगली-लगे लिहाफ में लिपटा, खाट पर बैठा, हुक्के की नय मुंह में दबाए, उसे गालियां दे रहा था।

यह लछमन था जो जन्म से ब्राह्मण होते हुए भी दूसरे सवर्ण हिन्दुओं के यहां रोटी बनाता था, बरतन मांजता था, पानी भरता था तथा अन्य छोटे-छोटे घरेलू काम करता था। वह छब्बीस वर्ष का युवक था। उसकी आकृति में कुक्रशता के साथ कुलीनता से गिरे ब्राह्मण की मेघा भी थी। उसके कंधे पर पानी ढोने का बहंगा रखा था।

''सूअर की बच्ची! मैं तो समझा तू मर गई या क्या हुआ!'' लक्खा चीख रहा था। ''न चाय, न रोटी! और मैं भूख के मारे मर रहा हूं। चाय चढ़ा और उन सूअर के बच्चे बक्खा, रक्खा को मेरे पास बुला।'' इस फटकार के नीचे एक हृदय छिपा था जो भला और वात्सल्यपूर्ण होते हुए भी अपनी शारीरिक हीनता तथा दौर्बल्य के लिए बच्चों पर प्रभुत्व प्रदर्शन का आवरण आवश्यक समझता था, नहीं तो वे उसकी वास्तविकता को पहचान कर उसका तिरस्कार करते, उसकी अवहेलना करते और उसे कूड़े-करकट की तरह दुत्कार देते।

सोहिनी ने तुरन्त आज्ञा-पालन किया। आग पर हंडिया चढ़ाते-चढ़ाते उसने अपने भाइयों को पुकारा–''अरे बख्या, रख्या! बाप्पू बुला रहा है तुम्हें।''

बहन की पुकार के जवाब में अकेला बक्खा कुटिया में आया। रक्खा तो तड़के ही रफूचक्कर हो गया था।

लड़का अपने मुख और गले पर से पसीना पोंछ रहा था, और हांफ रहा था, क्योंकि वह टट्टियों का एक ओर चक्कर निबटा आया था। उसकी काली आंखें आग उगल रही थीं और उसका विशाल चौड़ा मुख थकान से आकुंचित था। उसका गला पिपासाकुल तथा शुष्क था।

उसकी विशाल काया कुटिया के द्वार पर आ डटी। उसके नेत्रों की सफेदी दमक रही थी। वृद्ध ने पुत्र से कहा–''आज मेरी पसली में दर्द है। तू मेरी जगह मन्दिर के सहन और बड़ी सड़क पर झाड़ू लगा आ और उस सूअर रक्खा को टट्टियों पर तैनात कर दे।''

''बाप्पू! मन्दिर के पण्डित ने मन्दिर में अपना घर बुहारने को मुझे बुलाया है,'' सोहिनी बोली।

''जा तो बुहार आ, मेरा सिर क्यों खा रही है?'' लक्खा ने चिड़चिड़ाते हुए कहा।

''क्या बहुत दर्द है?'' अपने पिता को उसके कड़वे स्वभाव की चेतना दिलाने के लिए बक्खा ने व्यंग से पूछा, ''कहो तो पसली में तेल मल दूं!''

''नहीं, नहीं।'' बुड्ढा झुंझलाया और अपने पुत्र के तीखे व्यंग से उत्पन्न झेंप को छिपाने के लिए मुंह फिरा लिया। उसकी पसली में या कहीं भी बिलकुल दर्द नहीं

था। वह केवल चल चल रहा था। बुढ़ापे के कारण असमर्थ था और बच्चे की तरह काम से बचने के बहाने बना रहा था। ''नहीं, नहीं, तू अपना काम कर! मैं ठीक हो जाऊंगा,'' उसने कहा और किंचित् मुस्कुराया भी।

इतनी देर में चाय की पत्ती, पानी, दूध और चीनी का मिश्रण तैयार हो गया था। सोहिनी ने मिट्टी के दो रोग़नी प्याले भरे। बक्खा ने आकर एक उठा लिया और अपने पिता को दिया। दूसरा उठाकर उसने उत्तप्त वेग से अपने होंठों से लगा लिया। द्रव के तीक्ष्ण गरम स्वाद ने उसके सारे मांस को एक विशेष परितुष्टि से आप्लावित कर दिया। अपने पिता की भांति उसने अपनी चाय में फूंक नहीं मारी थी, इसलिए उसकी छोटी-छोटी घूंटों से उसकी जीभ जल रही थी। यह एक ओर चीज़ थी जो उसने गोरा-बैरक में टौमियों से सीखी थी। उसका चचा कहा करता था कि गोरे चाय का पूरा मज़ा नहीं ले सकते, क्योंकि वे फूंक ही नहीं मारते। परन्तु बक्खा जानता था कि उसके पिता तथा चचा दोनों की सड़प्पेदार घूटें 'नेटिव' आदतें थी। उसने अपने पिता से कहा था कि साहब लोग ऐसा नहीं करते। किन्तु वह अपने पिता का इतना आदर करता था कि उससे कोई आदत अपनाने का प्रस्ताव नहीं कर सकता था; हां अपने तई उसने अवश्य गोरों की यह आदत अपना ली थी और सदैव उसका अक्षरश: पालन करता था। सोहिनी द्वारा पिता के आगे रखे गए टोकरे में से एक रोटी का टुकड़ा खा और अपनी चाय निबटा वह बाहर निकल गया। बांस की तीलियों की, लकड़ी की मुठिया वाली बड़ी झाड़ू और टोकरी, जिन्हें लेकर उसका पिता सड़क बुहारने जाया करता था, उसने उठा लीं, और शहर की तरफ चला। अब उसे पहले पहल ध्यान आया कि आज सुबह वह यही तो इच्छा कर रहा था जो उसके पिता ने सहसा आज्ञा दी।

बहिष्कृतों की बस्ती की जाने वाली गली शीघ्र ही पीछे छूट गई। आज यह गली उसे बहुत छोटी लगी। गली की समाप्ति पर बस्ती से बाहर के विस्तृत खुले मैदान में सूर्य का ताप ऐसे फैल रहा था जैसे जलती हुई होली में से। अपने सामने फैले चौरस मैदान की निर्मल ताजी हवा में उसने गहरे सांस लिए और उसे कूड़े-करकट की दुर्गन्धयुक्त धुएं-भरी दुनिया तथा सूर्य की खुली सतेज दुनिया के महान् अन्तर की चेतना प्राप्त हुई। वह अपने शरीर को गरमाई पहुंचाना चाहता था। वह चाहता था कि उसकी उंगलियों पर जमी कड़ी पपड़ी के नीचे तक ताप पहुंच जाए और उसके हाथों के पीछे उभरी हुई नीली नसों में जमा रुधिर पिघल जाए। वह घुमा-घुमाकर धूप में अपने हाथ सेकने लगा। उसने सूर्य की ओर मुंह उठाया-क्षणभर को आंखे खोले रखीं, फिर आधी पुतली खोल लीं, आधी ढक लीं। फिर उसने अपनी ठोड़ी ऊपर उठा ली। इससे वह सुखी हुआ। उसका समस्त शरीर पुलकायमान हो गया और जहां-जहां तापाभास उसकी स्तमिभत त्वचा में घुस गया यहीं उसे एक विचित्र रोमांच हो आया। इस बलदायक वातावरण में उसने शक्ति का संचय अनुभव किया। स्वत: ही वह अपने चेहरे को रगड़कर गरम करने लगा कि वह सूर्य की किरणों को पूर्णतया ग्रहण कर सके और उसके सब छिद्र खुल जाएं। बस, उसने झाड़ू और टोकरी को बगल में दबाया और दोनों हाथों से अपने मुख को मसलने लगा। दो चार तेज घिस्से मारे कि उसके गालों का रुधिर आंखों के नीचे की उभरी हड्डियों की ओर चढ़ता प्रतीत हुआ और कानों तक पहुंच गया, कानों के सिरे लाल हो गए और उसकी कनपटियां दमकने लगीं। उसे ऐसा अनुभव हुआ जेसे वह अपने बचपन से शरद् ऋतु में इतवार के दिन लंगोट बांधकर पूर्ण नग्न धूप में खड़ा होकर सरसों का तेल मला करता था। इसकी याद करके उसने सूर्य की ओर देखा। उसकी पूरी चमक उसके मुख पर पड़ी और वह चुंधिया गया। वह कुछ देर खोया-सा खड़ा रहा—जाज्वल्यमान किरणों में मूढ़ बना। उसे भान हुआ मानो सूर्य के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है—सूरज, सूरज—सब जगह—उसके भीतर, बाहर, आगे पीछे। इस भावना ने उसे असुविधकर आकस्मिकता से आप्लावित किया था; फिर भी इसमें सूख था। उसे मानो किसी तरल खिंचाव के लोक में लटका दिया हो।

जिस अवधारण तेजमय लोक में वह चढ़ गया था, उससे बाहर निकला तो एक पत्थर से ठोकर खा गया और एक गाली बड़बड़ाया। सामने ही देखा कि धोबन का

बहिष्कृतों की बस्ती की जाने वाली गली शीघ्र ही पीछे छूट गई। आज यह गली उसे बहुत छोटी लगी। गली की समाप्ति पर बस्ती से बाहर के विस्तृत खुले मैदान में सूर्य का ताप ऐसे फैल रहा था जैसे जलती हुई होली में से। अपने सामने फैले चौरस मैदान की निर्मल ताजी हवा में उसने गहरे सांस लिए और उसे कूड़े-करकट की दुर्गन्धयुक्त धुएं-भरी दुनिया तथा सूर्य की खुली सतेज दुनिया के महान् अन्तर की चेतना प्राप्त हुई।

लड़का रामचरन, चमार का लड़का छोटे और उसका भाई रक्खा उसे ही देख रहे हैं। अपने-आप से बातें करते पकड़ा जाने से वह बहुत झेंपा। जैसे ही वे उसकी खिल्ली उड़ाया करते थे–उसके शरीर का भारीपन, उसके कपड़ों की आकृति, उसकी चाल, जो कुछ-कुछ तो उसके भारी झूमते नितम्बों के कारण हाथी से मिलती थी और कुछ मृदुता तथा चपलता के कारण चीते से। आज यदि उसे मुख को मसलते और अपने-आप से बातें करते देख लिया होगा तो अवश्य उस पर हंसेगे, विशेषयतया इसलिए कि वे जानते थे वह 'फैशन' का भक्त है। वे भी उसी की तरह 'फैशन' के भक्त थे, फिर भी इसके लिए उसकी हंसी उड़ाया करते थे। बक्खा बदले में धोबी के लड़के की पलकों के उड़े हुए बालों की ओर संकेत करके कहता, ''गोरा बनने को हद से ज्यादा साबुन मलने का नतीजा है यह!'' रामचरन के विषय में मज़ाक बनाने की ओर भी कई बातें थी–यही कि उसकी मां गुलाबो थी, उसके एक सुन्दर चंचल बहन थी, उसका सूखा शरीर हड्डियों का ढांचा-मात्र था, और वह एक काने गधे को नदी पर पानी पिलाने ले जाता था। छोटे पर वह वार नहीं कर सकता था, क्योंकि सुडौल शरीर का वह लड़का गली-भर में सबसे अधिक चुस्त और सुसज्जित था–बालों में सुघड़ता से तेल डालता था और खाकी निकर तथा सफेद टैनिस के जूते पहनता था। बक्खा उसे लगभग नमूने का 'जन्टूरमैन' मानता था–ठीक वैसा, जैसे की वह प्रशंसा करता तथा नक़ल करता। इस कारण उसके साथ उसका घनिष्ठ समझौता था और दोनों को पारस्परिक हंसी दिल्लगी अधिक सह्य थी।

''आ बे साले!'' रामचरन ने अपने पलक-रहित नेत्रों को मिचमिचाते हुए ऊपर लाकर कहा।

''अबे, मैं तो तेरा जीजा बनना चाहता हूं, अगर तू बनने दे'', बक्खा बोला। सब जानते थे कि वह रामचरन की बहन को चाहता है इसी सन्दर्भ से उसने रामचरन की मृदु गाली को एक मीठे मजाक में पलट दिया था।

''उसका तो आज ब्याह हो रहा है। अब तू टापा कर,'' रामचरन उत्तर दिया। उसे इस विचार से हर्ष था कि भविष्य में बक्खा यह मजाक नहीं कर सकेगा।

वे ही उसके पड़ोसी तथा घनिष्ठ सम्बन्धी हैं जिनके जीवन विचारों तथा भावनाओं से सामंजस्य बनाकर ही उसे अपना जीवन बिताना था। उनसे व्यवहारकुशलता की अपेक्षा नहीं थी। उनके बीच कुछ देर खड़ा रहकर वह उसी असाधारण विचारमग्न, रहस्यमयी, सूर्य का ताप खोजती, भीड़ का एक अभिन्न अंग बन गया। इस समुदाय का अवयव बनने के लिए अभिवादन या अभ्यर्थना की आवश्यकता नहीं थी जैसी कि प्रकाश और प्रसन्नता के प्राचुर्य की दुनिया में।

''ओहो, तभी तू आज इतने बढ़िया कपड़े पहने हुए हैं,'' बक्खा बोला। ''देखो, क्या बढ़िया जाकट है। मखमल पर वह सुनहरी डोरा जरा मुसतुस रहा है। इस पै इस्तिरी क्यों नहीं कर लेता? और अफ़्फ़ोह! वह जंजीर मुझे बहुत अच्छी लग रही है। जरा यह तो बता, इसमें घड़ी बंधी है या यों ही फैशन के लिए लटका रखी है।''

रामचरन लाल पड़ गया और चुप रहा। छोटा इस प्रश्नोत्तर पर चुपचाप मुस्कराता बैठा था। रक्खा प्रत्यक्ष ही सरदी मान रहा था, क्योकि उसने बक्खा से प्राप्त फटे-पुराने ओवरकोट की लम्बी बांहों के दस्ताने बना रखे थे और अपनी दोनों भुजाओं को सीने से सटाकर समेट रखा था। थोड़े-से और बहिष्कृत लड़के अपने कुरते-पाजामों में से जुएं मार रहे थे। उन्हें धूप में बैठना इतना तृष्टिप्रद था कि ऊपर देखने का कष्ट कौन करें। अपने काले हाथ-पैर फैलाए धूप में बैठे या खड़े वे एक साधारण विषण्ण, शिथिल, खोयी-सी मुद्रा धारण किए थे। मानो उनके भीतर एक द्वन्द्व चल रहा था जिसके द्वारा वे अपनी आत्माओं की शीत, स्तब्ध, निर्जीव भावनाओं से ऊपर उभरकर एक ताप-लोक में नवजीवन प्राप्त कर रहे थे। बाहर की खुली हवा में भी जेल की तंग, अंधेरी कालकोठरियों-जैसे उनके एक-एक कोठरी के कच्चे घरों की छाया उनका पीछा नहीं छोड़ रही थीं। वे सब चुप से मानो बन्धन-मुक्त होने की यह क्रिया उनसे सही न जा रही हो। जिन अदृश्य ग्रन्थियों से उन्होंने अपने-आपको जकड़ रखा था उन सब को महान् जीवनदाता ने काट दिया था। उसने उनके प्राणों के प्रच्छन्नतम भागों को पिघला दिया था। और इस महान् आश्चर्य, रहस्य तथा चमत्कार को उनकी आत्माएं आंखें फाड़-फाड़कर देख रही थीं।

कुछ देर पश्चात् उन्होंने सिर हिलाकर बक्खा का अभिवादन किया। वह उन्हें अच्छी तरह समझता था। जब से वह गोरा-बैरक से परिष्कृत बुद्धि लेकर लौटा था, तब से वह इन्हें अपने से तुच्छ समझता था, फिर भी यह जानता था कि वे ही

उसके पड़ौसी तथा घनिष्ठ सम्बन्धी हैं जिनके जीवन विचारों तथा भावनाओं से सामंजस्य बनाकर ही उसे अपना जीवन बिताना था। उनसे व्यवहारकुशलता की अपेक्षा नहीं थी। उनके बीच कुछ देर खड़ा रहकर वह उसी असाधारण विचारमग्न, रहस्यमयी, सूर्य का ताप खोजती, भीड़ का एक अभिन्न अंग बन गया। इस समुदाय का अवयव बनने के लिए अभिवादन या अभ्यर्थना की आवश्यकता नहीं थी जैसी कि प्रकाश और प्रसन्नता के प्राचुर्य की दुनिया में। पृथ्वी के उच्छिष्ट, मानवता के मल, इन अधर्मों के जीवन में तो केवल मौन, उग्र मौन, जीवन के लिए लड़ता मृत्यु का मौन ही सर्वोपरि था।

पर जब बक्खा उनसे एकाकार हो गया तो उसकी तथा उन सबकी प्रात:काल के सौन्दर्य के प्रति विचित्र प्रतिभावनाएं जागृत हुई।

''क्यों, ओ बक्खे!'' छोटा बाला, सूर्य का प्रकाश उसके काले चिकने मुख पर खेल रहा था और वह धूप की प्रसन्नता से खिल रहा था, मानो सूर्य की विशेष स्नेह-प्राप्त सन्तति हो। ''आज किधर चला?''

'मेरा बाप बीमार है,'' बक्खा ने उत्तर दिया। ''उसकी जगह मंदिर के सेहन में और बड़ी सड़क पर झाड़ू लगाने जा रहा हूं!'' फिर वह अपने भाई से बोला, ''ओ रक्खा! आज तू सुबह ही क्यों भाग आया? बापू बीमार है और मेरे पीछे टट्टियों का सब काम करना है। जा, मेरे भाई, घर भाग जा। सोहिनी तेरे लिए गरमागरम चाय लिए बैठी है।''

रक्खा ठिंगना, लम्बे चेहरे का, काला, गुट्टा आदमी था। उसे भाई की धमकी बुरी लगी। पर वह शीघ्र ही उठ खड़ा हुआ और कुपित-सा घर के रास्ते पर हो लिया।

''अरे, तू मत जा! मत जा!'' रामचरन ने शैतरानी से उसे पुकारा। ''यह तेरा भाई तो जन्टुरमैन' बनना चाहता है। आप तो सड़क बुहारने चला है, तुझे टट्टियों के गन्दे काम पर भेज रहा है।''

''बक-बक मत कर बे साले,'' बक्खा प्रसन्न मुद्रा से बोला,'' उसे जाकर थोड़ी देर काम करने दे।''

''आ बे खुट्टी खेलें!'' कमीज़ की जेब में से 'लालटेन' की सिगरेट का डिब्बा निकालता हुआ और बक्खा को एक देने से पहले उन्हें गिनता हुआ, छोटा बोला। ''आ, हम भी दूसरों के साथ मिलकर खेलें।'' उसने बाजे वाले के बेटे क्लेटन तथा बढ़ई के बेटे गोपू की ओर संकेत किया जो किए गुच्ची खोदकर गोलियां खेल रहे थे।

''आ'', छोटे ने फिर आग्रह किया, ''कुछ पैसे जीतेंगे।''

''नहीं, मुझे काम पे जाना है,'' बक्खा ने प्रलोभन को दृढ़तापूर्वक अस्वीकार करते हुए कहा। ''मेरा बाप देख लेगा तो गुस्सा होगा''।

''अरे, भूल जा बुड्ढे को। आ, थोड़ी देर के लिए,'' छोटे ने फुसलाते हुए आग्रह किया।

''आ भी, आ,'' रामचरन ने प्रलोभन दिया।

वे घर से भगे हुए थे और उनके बापों की पुकार पड़ने ही वाली थी। पर वे चिन्तारहित जीवन पसन्द करते थे और प्रात:काल की धूप से कभी वंचित नहीं होते थे चाहे घर पर कितनी ही डांट या मार भी सहनी पड़े। बक्खा सिद्धान्त का आदमी था। यद्यपि वह सब खेलों में सर्वोच्च था और खुट्टी में भी उन सबको हराता, परन्तु उसके लिए कर्तव्य का नम्बर पहला था। उसी पर उसका ध्यान जमा था और वह अपना रास्ता लेने को था।

''अच्छा ठहर तो,'' छोटा बोला। ''वह बड़े बाबू का लड़का आ रहा है। आज हॉकी की बता। '31वीं पंजाबी' के लड़के ने हमारे से मैच खेलने को चैलेंज भेजा है।''

''अगर बापू ने आने दिया तो आऊंगा।'' बक्खा बोला, तब उसने दूसरी तरफ देखा और दो सफेदपोश दुबले लड़कों को देखकर अपना दायां हाथ माथे तक उठाकर उन्हें सलाम किया।

''सलाम बाबूजी!'' उसने आदरपूर्वक कहा।

दोनों लड़कों में बड़ा सीधा, भोला, कुछ साधारण दस वर्ष का बच्चा था–दुबला-पतला, चपटी नाक, उभरी हुई गाल की हड्डियां। यह उत्तर में मुस्कराया। छोटा आठ वर्ष था–अण्डाकार उत्पाति चेहरा, चौड़े माथे से लेकर बाहर निकले मोटे अधर तथा दृढ़ छोटी ठोड़ी तक अंग-अंग में जीवन-स्फूर्तिमय। उसकी काली आंखों में परिचय की चमक आयी।

''आओ, लड़कों!'' रामचरन और छोटे ने धृष्ट अहंकार से कहा। ''आज हॉकी की बताओ। '31वीं पंजाबी' के लड़कों से आज मैच है।

''हां, हम दोपहर-बाद खेलेंगे।'' अपने भाई की उंगली पकड़े जहां खड़ा था वहीं सोत्साह उछलता हुआ छोटे वाला बोला। अभी वह इतना बड़ा भी नहीं था कि स्टिक पकड़ सके, न उससे पूछा ही गया था। वह जानता था कि लड़के उसे कभी नहीं खिलाते थे, क्योंकि वह बहुत छोटा था और उन्हें डर था कि उसके चोट लग जाएगी और फिर वह जाकर उनकी शिकायत करेगा।

''अच्छा, हमें स्टिकें दोगे?'' रामचरन ने पूछा। वह चतुरता से बच्चे के उत्साह से लाभ उठाकर प्रतिज्ञा कराना चाहता था। यद्यपि प्रतिज्ञा के पालन न किए जाने की अधिक सम्भावना थी, तो भी वह उस दोपहर बाद काम आएगी यदि कहीं बच्चे को जिद्द सवार हो गई जैसी कि उसे प्राय: न खिलाए जाने पर हो जाती थी।

लड़कों के पिता पलटन में बड़े बाबू से इसलिए पलटन की हॉकी-टीम के कैप्टेन पर उनका असर था और उसने इन्हें लगभग एक दर्जन उतरी हुई हॉकी-स्टिकें दे दी थीं। '31वीं डोगरा' के लड़कों की टीम में अधिकतर पास-पड़ौस के निर्धन अछूतों के लड़के थे और बाबुओं के

लड़कों से स्टिक उधर लेकर ही प्रत्येक तीसरे पहर के अभ्यास के खेल का काम चलाते थे। बड़े वाला लड़का बहुत उदार था और अछूतों के साथ खेलने पर अपनी मां की गालियां सहर्ष सह लेता था, लेकिन छोटे वाला थोड़ा फुसलाने पर मानता था।

''हां, मैं हवलदार चरतसिंह से बहुत बढ़िया नयी स्टिक लाया हूं,'' वह बोला, ''और एक नयी गेंद भी।'' तब सहसा अपने बड़े भाई के कोहनी मारता हुआ वह चिड़चिड़ाया, ''आओ, चलना नहीं है क्या? स्कूल को देर हो जाएगी!''

बक्खा ने छोटे वाले के मुख पर एक विचित्र उत्साह की झलक देखी। स्कूल जाने की उत्सुकता! कितनी सुन्दर थी वह! पढ़-लिख सकना कितना अच्छा होगा! स्कूल जाकर अखबार पड़ सकते हैं। साहब लोगों से बात कर सकते हैं। खत आ जाए तो पढ़वाने के लिए मुंशी के पास नहीं भागना पड़ता। न चिट्ठी लिखवाने को पैसे देने पड़ते हैं! उसे बारिसशाह का 'हीर और रांझा' पढ़ने को कितनी इच्छा थी! और जब वह गोरा बैरक में रहता था तो टोमियों की-सी 'टिश-मिश टिश-मिश' बोलने को अपने प्राण निकाले डालता था।

उसने जब गोरा-बैरक वाले चाचा से कहा था कि यह साहब बनना चाहता है तो उसने बताया था कि साहब बनने के लिए स्कूल जाना पड़ता है। और वह स्कूल जाने के लिए खूब रोया-चिल्लाया था। पर तब उसके पिता ने समझाया था कि स्कूल बाबूओं के लिए होते हैं, गरीब भंगियों के लिए नहीं। तब उसकी समझ में इसका कारण नहीं आया था। गोरा बैरक में कुछ काल बाद उसने जाना कि क्यों उसके पिता ने उसे स्कूल नहीं भेजा था। वह भंगी का लड़का था और कभी बाबू नहीं बन सकता था। कुछ और समय बाद उसने समझा था कि कोई भी स्कूल ऐसा नहीं है जो उसे भरती करें; क्योंकि दूसरे बच्चों के माता-पिता हरगिज यह बरदाश्त नहीं कर सकते थे कि उनके बच्चे बहिष्कृतों के बच्चों को छूकर नापाक बनें। वह सोचता, यह बात कितनी निरर्थक है! हिन्दू बच्चे तो खुशी से उसे हॉकी में छूते थे और स्कूल में अपने साथ लेने को भी मना न करते! लेकिन मास्टर लोग अछूतों के बच्चों को न पढ़ाते, कहीं सबक पर उंगली रखकर बताते समय उनकी उंगलियां अछूतों के किताब के पन्ने छूकर अपवित्र हो जाएं! ये बुड्ढे हिन्दू बड़े निर्दयी थे। वह भंगी था, यह वह जानता था; किन्तु उसकी आत्मा इस तथ्य को स्वीकार नहीं कर सकती थी। उसने छः वर्ष की आयु से टट्टियां साफ करनी प्रारम्भ की थीं और अपने वंश-परम्परागत पेशे को ग्रहण किया था, पर वह साहब बनने के स्वप्न देखता था। कई बार उसकी अपने-आप ही पढ़ने की उत्कट इच्छा हुई थी। गोरा-बैरक के जीवन ने उसके मस्तिष्क में विचारों की आंधी पैदा कर दी थी। कभी अवकाश के समय वह बैठ जाता और पढ़ने का अभिनय करता। पिछले दिनों वह बाजार गया और सचमुच अंग्रेजी की पहली किताब खरीद लाया। पर वह अपने-आपको वर्ण-परिचय से आगे नहीं बढ़ा सका। आज सुबह की धूप में खड़े हुए जब उसने उत्सुक छोटे लड़के को अपने भाई को स्कूल की ओर घसीटते देखा तो उसे सहसा विचार आया कि बाबू के लड़के से पढ़ाने की प्रार्थना करे।

'बाबू जी,' वह बड़े भाई से बोला, ''तुम कौन से दर्जे में हो?''

''पांचवी कक्षा में,'' लड़के ने उत्तर दिया।

''तब तो अवश्य तुम पढ़ाने के लिए पर्याप्त जानते हो।''

''हां'', लड़का बोला।

''तो तुम्हें प्रतिदिन मुझे एक पाठ पढ़ाने में अधिक कष्ट होगा?'' लड़के को झिझकते देख फिर बोला, ''मैं उसके लिए तुम्हें पैसे दूंगा।''

वह बहुत मन्द खड़खड़ाती आवाज में बोला और प्रत्येक शब्दांश के साथ उसकी विनय गहराई तथा सच्चाई में बढ़ती जाती थी।

बाबू के लड़कों को जेब खर्च के लिए अधिक पैसे नहीं मिलते थे। उनके मात-पिता कंजूस थे और शायद ठीक ही मानते थे कि उनके बच्चे को छोटी जाति के लड़कों की तरह बाजार से खरीदकर अंधधुन्ध समय-असमय पर नहीं खाना चाहिए। बड़े लड़के में उत्कट भौतिक प्रवृत्ति सजग हो गई थी-वह जिस किसी से भी पैसा-दो-पैसा मिल जाता, जोड़ता रहता था।

''बहुत अच्छा,'' वह बोला, ''मैं पढ़ा दूंगा। किन्तु . . .'' अपनी दबी हुई पैसा

हिन्दू बच्चे तो खुशी से उसे हॉकी में छूते थे और स्कूल में अपने साथ लेने को भी मना न करते! लेकिन मास्टर लोग अछूतों के बच्चों को न पढ़ाते, कहीं सबक पर उंगली रखकर बताते समय उनकी उंगलियां अछूतों के किताब के पन्ने छूकर अपवित्र हो जाएं! ये बुड्ढे हिन्दू बड़े निर्दयी थे। वह भंगी था, यह वह जानता था; किन्तु उसकी आत्मा इस तथ्य को स्वीकार नहीं कर सकती थी।

पाने की इच्छा को प्रकट करने को वह बात का विषय बदलना चाहता था। बक्खा उसकी निगाह से ताड़ गया उसका क्या मतलब था।

''मैं तुम्हें एक आना प्रति पाठ दूंगा।''

बाबू का लड़का एक ढोंग की हंसी हंसा, जो इतने छोटे बच्चे में विचित्र प्रतीत हुई। उसने अपनी स्वीकृति प्रकट की, और फिर सोचकर पैसा-प्रेमी की लोक-दिखावे की भाषा में बोला–''पैसे का कोई ख्याल नहीं है।''

''आज तीसरे पहर ही प्रारंम्भ कर दे।'' बक्या ने अनुनय की।

''हां'', लड़का राज़ी हुआ। वह थोड़ी देर खड़ा रहकर बातें करना चाहता था कि इस राज़ीनामे को कुछ सुहावने शब्दों से दृढ़ कर दें; किन्तु उसका भाई अब बहुत चिड़चिड़ा हो गया था और उसकी बांह पकड़कर खींच रहा था। कुछ तो उन्हें स्कूल के लिए देर हो रही थी, कुछ उसे अपने भाई के इस प्रकार कमाए पैसे से ईर्ष्या हो रही थी।

''आओ'', छोटे वाला चिल्लाया, ''सूरज कितना चढ़ आया! आज स्कूल में देर होने पर पिटाई होगी।''

बक्खा उस बच्चे के क्रोध का भेद ताड़ गया और एक घूस देकर उसे मनाने का प्रयत्न किया।

''तुम भी तो मुझे पढ़ाओगे न? क्यों छोटे भैया, तुम्हें मैं एक पैसा रोज़ दूंगा।''

बक्खा जानता था कि इससे लड़के की ईर्ष्या शांत हो जाएगी और वह चिढ़कर बड़े भाई की चुगली नहीं खाएगा। उसे पता था कि कहीं छोटे वाले ने अपनी मां से कह दिया कि बड़ा एक भंगी के लड़के को पढ़ाता है तो वह घर से ही निकाल दिया जाएगा। उस जैसी पवित्र हिन्दू महिला को यह सुनकर विकट क्रोध आता है।

छोटे वाला इतनी उतावली में था कि इस घूस का मान न कर सका। वह स्कूल की ओर देख रहा था और देर होने का भूत उसके सिर पर सवार था। वह अपने भाई के कुरते का छोर पकड़कर उसे घसीटता ले गया।

बक्खा ने उसको जाते देखा। आज तीसरे पहर वह पहला पाठ पढ़ेगा–इस आशा से वह फूल उठा और आगे बढ़ा।

''ठहर! ओ बाबू, अब तो तू बड़ा आदमी बनने जा रहा है,'' रामचरन व्यंग करके चिल्लाया। ''अब तो हमारे से बोलने का भी नहीं।''

''तू तो पागल है,'' बक्खा ने हंसते हुए उत्तर दिया। ''अब मुझे जाना ही पड़ेगा। सूरज बढ़ता जा रहा है और मुझे मंदिर की सड़क और दालान बुहारने है।''

बक्खा जानता था कि इससे लड़के की ईर्ष्या शांत हो जाएगी और वह चिढ़कर बड़े भाई की चुगली नहीं खाएगा। उसे पता था कि कहीं छोटे वाले ने अपनी मां से कह दिया कि बड़ा एक भंगी के लड़के को पढ़ाता है तो वह घर से ही निकाल दिया जाएगा। उस जैसी पवित्र हिन्दू महिला को यह सुनकर विकट क्रोध आता है।

''अच्छा, आज हॉकी में अपना पागलपन दिखाउंगा।''

''अच्छा,'' बक्खा ने कहा और एक बग़ल में टोकरा दाबे, दूसरी में झाड़ू, तथा मन में बुलबुल का संगीत लिए, वह शहर के द्वार की ओर बढ़ा।

'टन-नन-नन-टन', एक बैलगाड़ी की घंटियां उसके पीछे बजीं, जब वह दूसरे पैदल चलने वालों के साथ सड़क के बीच में चल रहा था। वह कूदकर एक ओर बच गया और धूल में अपने बूट घसीटने लगा। वह क्या करता! शहर-बोर्ड की कार्य-अक्षमता के कारण किनारे पर पक्की पटरी थी ही नहीं। धूलि के छोटे-छोटे कण उड़कर उसके मुख पर बैठे रहे थे, छकड़े के पहिये गहरी लीक में चूं-चूं कर रहे थे, ये सब उसे बड़े सुखद प्रतीत हुए। शहर-द्वार के बाहर कई टालें थीं जिन पर पास के मरघट में मुर्दो को जलाने के लिए लकड़ी बिकती थी। इनमें से एक के पास एक मुर्दे को लिए कुछ आदमी रुके हुए थे। अरथी पर लाश बंधी थी। लाश के ऊपर सुनहरी सितारे-लगा लाल कपड़ा लिपटा था। बक्खा ने उसकी ओर घूरा और क्षणभर को मृत्यु का घोर भय उस पर ऐसे छा गया जैसे उसका सामना किसी सांप या डकैत से हो गया हो। फिर उसने यों सोचकर अपने को सान्त्वना दी–''मां कहती थी कि गलियों में मुर्दे का मिलना बड़ा सौभाग्यसूचक है।'' और वह आगे बढ़ा। कहीं छोटी-छोटी फल की दुकानों पर मैले कपड़े पहने, घोटमघोट सिर, दाढ़ी पर खिज़ाब लगाए, मुसलमान गंडेरियां काट-काटकर ढेर लगा रहे थे; कहीं हिन्दू हलवाई छोटे-छोटे झाबों पर रखे लोहे के गोल थालों में मिठाईयां बेच रहे थे; कहीं पनवाड़ी की दुकान पर तीन-बड़े-बड़े आईनों तथा हिन्दू देवताओं व गोरी सुन्दरियों के चित्रों से घिरा, मैला साफ़ा बांधे एक लड़का पान के हृदयाकार पत्तों पर कत्था-चूना लगा रहा था–उसके दाहिनी ओर बहुत से 'लालटैन' और 'कैंची' की सिगरटों के डिब्बे सजे थे, बांई और बीड़ियों के बण्डल। पहले तो बक्खा ने डरते-डरते आईने में अपनी परछाईं देखी, फिर उसका ध्यान सिगरेटों पर गया। वह सहसा रुक गया और बड़े विनीत भाव से दुकानदार से हाथ जोड़कर उसने पूछा कि वह 'लालटेन' के एक डिब्बे का मूल्य किस स्थान पर

रख दे। दुकानदार ने अपने पास के तख्ते के एक कोने की ओर संकेत किया। बक्खा ने वहां अपनी इकन्नी रख दी। पनवाड़ी ने पानों पर पानी छिड़कने की लुटिया में से थोड़ा पानी इकन्नी पर डाला और इस प्रकार उसे पवित्र करके उठाया और अपने गल्ले में डाल लिया। तदुपरान्त उसने 'लालटेन' का एक डिब्बा बक्खा पर ऐसे फेंका जैसे कोई कसाई अपनी दुकान के कोनों पर सूंध-सांध करते अड़ियल कुत्ते पर हड्डी फेंक दे।

बक्खा, ने डिब्बा उठाया और आगे बढ़ा। उसने डिब्बा खोलकर एक सिगरेट निकाली। वह माचिस खरीदना तो भूल ही गया था। उसके विनय ने उसे लौटने नहीं दिया—जैसे किसी गूढ़ भावना ने उसे सचेत किया हो कि एक भंगी के लड़के को दूसरे लोगों के सामने कम-से-कम बार पड़ना चाहिए। फिर एक भंगी, एक कमीन का सिगरेट पीता दीखना भगवान् के विरुद्ध अपराध है। अमीरों की भांति सिगरेट पीना निर्धनों के लिए ढीठता समझा जाता है—यह बक्खा जानता था। फिर भी वह सिगरेट पीना ही चाहता था। केवल वह हाथ में झाड़ू और टोकरी होने के कारण दूसरों की आंख बचाना चाहता था। रास्ते के किनारे धूल पर चटाई बिछाकर नाई की दुकान फैलाए बैठे, बड़ा-सा हुक्का गुड़गुड़ाते, एक मुसलमान पर उसकी दृष्टि गई।

बक्खा, ने डिब्बा उठाया और आगे बढ़ा। उसने डिब्बा खोलकर एक सिगरेट निकाली। वह माचिस खरीदना तो भूल ही गया था। उसके विनय ने उसे लौटने नहीं दिया—जैसे किसी गूढ़ भावना ने उसे सचेत किया हो कि एक भंगी के लड़के को दूसरे लोगों के सामने कम-से-कम बार पड़ना चाहिए। फिर एक भंगी, एक कमीन का सिगरेट पीता दीखना भगवान् के विरुद्ध अपराध है। अमीरों की भांति सिगरेट पीना निर्धनों के लिए ढीठता समझा जाता है—यह बक्खा जानता था।

''मियांजी, अपनी चिलम में से एक पतंगा मेहरबानी कर फेंक दो'', उसने प्रार्थना की।

''पंतगे का क्या करेगा। सिगरेट सुलगानी हो तो इसी पर झुककर सुलगा ले,'' नाई ने उत्तर दिया।

यद्यपि हिन्दुओं के मुसलमान भी उसी की तरह अछूत थे और इसीलिए वे उसके अधिक निकट थे; फिर भी मुसलमानों से या किसी से भी मेल-जोल बढ़ाना उसकी आदत से बाहर था। उसे झेंप तो बहुत चढ़ी पर उसने अपनी सिगरेट सुलगा ही ली। एक कश खींचकर नाक से धुआं निकालते हुए उसने अनुभव किया कि वह बहुत प्रसन्न और चिन्तारहित है और वह इठलाता हुआ आगे बढ़ा। धुएं के बादल उसकी आंखों के आगे बनते और लोप हो जाते पर उसका ध्यान तम्बाकू की उस सफेद सलाई पर जमा था जो क्षण-क्षण पर छोटी होती जाती थी ज्यों-ज्यों उसका अगला काला और लाल सिरा सुलगता जाता था।

शहर के विशाल पक्के द्वार को पारकर मुख्य बाजार में घुसने पर बक्खा रंगों के एक समुद्र में मग्न हो गया। लगभग एक साल बाद आज वह बाजार में प्रवेश कर रहा था—टट्टियां साफ करने के काम से उसे अवकाश ही नहीं मिला था। इस कारण भीड़-की-भीड़ भावनाओं ने उसे आ घेरा। छोटी-बड़ी लहरिएदार सड़कों के दोनों ओर दुकानें थीं, जिन पर टाट या किरमिच के परदे टंगे हुए थे। ऊपर भांति-भांति के गुम्बददार बारजे निकले हुए थे। दुकानों से भिन्न-भिन्न प्रकार के बिक्री के माल सजे हुए थे, जिन पर खरीदारों की खासी भीड़ मंडरा रही थी। इन सबको उत्सुकतापूर्वक घूरते हुए बक्खा को पहली चेतना हुई बाज़ार की गंध की—नालियां, अनाज, ताज़ी और सड़ी हुई साग-सब्जी, मसाले, मर्द, औरत, हींग आदि अनेक अचारू वस्तुओं से एक मधुर परिमल निकल रहा था। फिर अनगिनत रंगों की प्रदर्शनी थी। पेशावरी फल वाला नीला रेशमी साफा बांधे, जरी की किनारी लगी सुर्ख मखमली जाकेट पहने, लम्बा सफेद कुरता और सलवार पहने, अपने चारों ओर लाल, नारंगी और बंजनी रंग के फलों के टोकरे सजाए बैठा था। रुधिर-रक्त बकरे की लाशों को लटकाए बैठा कसाई एक लकड़ी के पिन्दे पर मांस के टुकड़े काट रहा था तथा उसका अनुचर सिलगते कोयलों पर सीक-कबाब भून रहा था या काली लोहे की कढ़ाई में उन्हें तल रहा था। आढ़ती की दुकान पर पड़ा गेहूं का ढेर कनक-सा दमक रहा था। हलवाई के थालों में रंग-बिरंगी मिठाई का इन्द्रधनुष बना हुआ था। आते-जाते मर्द-औरतों के रंग-बिरंगे साफ़े, साड़ियों का तो कहना ही क्या—विधवाओं के काले आचरण से लेकर नवोढ़ाओं के गुलाबी, आसमानी, शुतरी रंगों तक सभी रंग उस अदलती-बदलती, हिलती- डुलती भीड़ में थे। ब्राह्मणों के गौर वर्ण, घसियारों के कृष्ण वर्ण तथा पठानों के रक्त वर्ण का सम्मिश्रण भी उस नर-समुदाय में था।

बक्खा हक्का-बक्का हो क्षणभर को

खो-सा गया। फिर उसने दृढ़तापूर्वक अपना ध्यान इस बहुरंगी लड़खड़ाती भीड़ से हटाकर सुन्दरता से सजाई दुकानों पर जमाया। उसके घूरने से बच्चे-जैसी उत्सुकता थी—कहीं वह बढ़ई की कारीगरी में मग्न हो जाता, तो कहीं दरजी की चलती सीने की मशीन में डूब जाता। 'वाह, वाह! क्या खूब!' उसकी अन्तरात्मा कहती और उसकी पहले की देखी चीज़ें भी उसे आज नई प्रतीत हुई। फिर उसकी दृष्टि उस ओछे नीच वाचाल बनिये गणेशनाथ पर गयी जिसके पर्वताकार आटे, गुड़, मिर्च, मटरी, गेहूं के टोकरों के सामने बैठकर उसने एक कंकरी नमक और एक बूंद घी की भीख मांगी थी। उसने तुरन्त उधर से आंख फिरा ली, क्योंकि पिछले दिनों उसके पिता और बनिये में उस चक्रवृद्धि ब्याज के बारे में कुछ कहा-सुनी हो गई थी, जो उसकी मां की अन्त्येष्ट क्रिया समाप्त करने को उसके कड़े गिरवी रखकर लिए गए ऋण पर गणेश मांगता था। यह दुखद याद थी! उस याद से पीछा छुडाने को, अपनी चेतनारहित प्रसन्नता में वह उस बज़ाज़ की दुकान की ओर झुका जहां एक थोंदल लाला निर्मल श्वेत मलमल का ढीला-ढाला कुरता और धोती पहने लाल खारबे की जिल्द-बंधी बहीं में हिसाब लिख रहे थे और उनका अनुचर मैनचैस्टर के बने कपड़े के थान-के-थान खोलकर एक ग्रामीण वृद्ध दम्पत्ति को दिखा रहा था तथा लगातार बोलता हुआ विविध युक्तियों द्वारा उनसे खरीदने का आग्रह कर रहा था। दुकान के एक कोने में सजे ऊनी कपड़ों ने बक्खा को आकर्षित किया। यही तो है वह कपड़ा जिसके साहब लोग सूट बनवाते हैं। ग्रामीण ाों के सम्मुख तो कुरते और तहमद का कपड़ा पड़ा था। उससे उसे क्या लेना! किन्तु ऊनी कपड़ा कितना चमकीला और बढ़िया था! और सबसे अधिक मूल्यावान! न उसे खरीदने की इच्छा थी, न कभी कोट-पतलून पहनने की आशा; फिर भी उसने अपनी जेब टटोलकर देखा कि उसके पास कपड़े के मूल्य की एक क़िस्त भी देने को पैसे हैं या नहीं। केवल आठ आने थे। उसे याद आया कि उसने बाबू के लड़के को अंग्रेज़ी पाठों के लिए पैसे देने का वादा किया था। वह सड़क के पार बंगाली मिठाई की दुकान की ओर गया। काले कपड़े पहने मोटे हलवाई के सामने सजी थाली में रखी, चांदी के वर्क़-लगी, बरफी को देखकर उसके मुंह में पानी आ गया। 'जेब में आठ आने हैं।' उसने मन में सोचा, 'क्या मैं मिठाई ले सकता हूं? यदि कहीं मेरे बाप को पता चल गया कि मैं मिठाइयों पर अपने सब पैसे खर्च कर डालता हूं,' वह सोचने लगा और झिझका, 'पर जीना तो एक ही बार है,' उसने मन में कहा, 'मिठाई चख ही लूं, क्या पता, कल मैं मर ही जाऊं!' एक कोने में खड़ा होकर वह चुपके-चुपके दुकान को झांकने लगा कि सबसे सस्ती वस्तु कौन सी है जिसे वह खरीद सके। सजी हुई रसगुल्ले, गुलाबजामुन और लड्डू की थालियों पर उसकी दृष्टि फिर गई। उन सब बहुमूल्य रस-लिप्त वस्तुओं को देखकर वह ताड़ गया कि ये तो सस्ती हो नहीं सकती—कम-से-कम उसके लिए तो नहीं—कारण कि भंगियों तथा अन्य बहिष्कृतों को दुकानदार मूल्य की दर में भी ठगते थे, मानो उनके साथ व्यवहार करने की अपवित्रता को अधिक मूल्य लेकर धोते हों। उसकी दृष्टि जलेबियों पर गयी। वह जानता था कि ये सस्ती होती हैं। ये पहले भी उसने खरीदी थीं। उसे उनका भाव भी मालूम था—एक रूपये सेर।

''चार आने की जलेबी,'' कोने में से आगे बढ़ने का साहस करते हुए बहुत धीमे से बक्खा ने कहा। उसकी गरदन झुक रही थी। वह मिठाई खरीद रहा था—इस अपराध की मानसिक चेतना में वह न जाने क्यों लजा रहा था।

भंगी की पसन्द पर हलवाई को थोड़ी हंसी आ गई। एक लालची कमीन के अतिरिक्त और कौन चार आने की जलेबी खरीदता! पर वह तो दुकानदार था। उसने साधारण मुद्रा धारण कर झट तराजू उठायो, एक पलड़े में पत्थर और लोहे के छोटे बाट चढ़ाये, दूसरे में जलेबी। जिस फुरती से उसने बीच की डोरी को झटका देकर तराजू की डण्डी को पलभर को संतुलित किया और पुराने 'डेली मेल' का पन्ना फाड़कर जलेबी उलटी, उसे बक्खा हक्का-बक्का ही देखता रहा। उसे ज्ञान था कि वह ठगा गया था किन्तु शिकायत करने की हिम्मत नहीं कर सका। हलवाई द्वारा फेंकी गई जलेबियों को क्रिकेट की गेंद की तरह दबोचकर, जूते रखने के तख्ते पर चार इकन्नी रखकर, झेंपता हुआ, किन्तु प्रसन्नचित्त, बक्खा आगे बढ़ा। हलवाई के नौकर ने ऊंचे से इकन्नियों पर पानी डाल, उन्हें लाला के थाल में डाल दिया।

बक्खा के मुंह में पानी आ रहा था। उसने जलेबियों की पुड़िया खोली और जल्दी से एक टुकड़ा मुंह में रख लिया। गरम मीठे रस का स्वाद बड़ा तुष्टिकारक तथा मज़ेदार था। उसने पुड़िया पर फिर धावा बोला। उसे मुंह ठसाठस भर लेना अच्छा लगता था। तभी तो खाने की चीज का पूरा मज़ा आता है। यों मुंह चलाते हुए, चारों तरफ लखाते हुए, चले जाना कितना सुहावना था। भिन्न-भिन्न व्यापारियों, वकीलों, डॉक्टरों के बड़े-बड़े साइनबोर्ड जिन पर मोटे-मोटे अक्षरों में उनके नाम, डिगरी, पेशे लिखे हुए थे, दुकानों के ऊपर की मंजिल से उसकी ओर घूर रहे थे। कितना अच्छा होता, यदि वह इन सब चित्रित शब्दों को पढ़ सकता! चलो आज ही तीसरे पहर से तो उसने अंग्रेज़ी के पाठ लेने का बन्दोबस्त कर लिया था। यही सांत्वना का विषय था। तभी उसकी दृष्टि खिड़की में बैठी एक आकृति पर गयी। वह खोया-सा तनम्यता से उसे घूरने लगा। ■

(इंडिया बुक सेन्टर, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित 'अछूत' से साभार)

(शेष अगले अंक में)

डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर - जीवन चरित

■धनंजय कीर

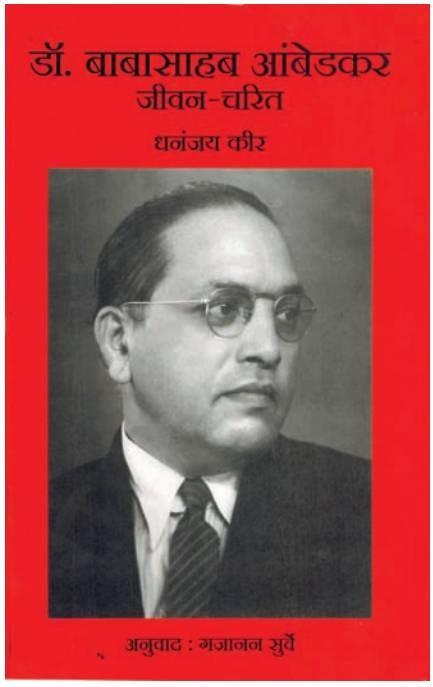

अम्बेडकर गुरुजी ने भीम के लिए और एक संस्मरणीय कार्य किया। भीम का कुलनाम अंबावडेकर था। उन्हें ऐसा लगा कि यह कुलनाम ठीक नहीं। अत: एक दिन अम्बेडकर गुरुजी ने भीम से कहा कि वह सरल-सुलभ अम्बेडकर नाम धारण करें। तुरन्त ही स्कूल के कागजात में उन्होंने वह नाम दर्ज कर लिया। अम्बेडकर गुरुजी को अपना नाम अमर करने की ऐसी बुद्धि प्राप्त हुई, यह उनका भाग्य ही कहना चाहिए। अम्बेडकर गुरुजी को अपने प्रिय शिष्य का बुढ़ापे में भी विस्मरण नहीं हुआ। आगे दलितों के प्रतिनिधि के रूप में गोलमेज परिषद् के लिए डॉ. अम्बेडकर जब विलायत जाने के लिए निकले; तब शुभेच्छासूचक और अभिनंदनपरक एक पत्र उन्होंने अपने शिष्य को भेजा। वह पत्र एक अमूल्य थाती है. यह मानकर 'अम्बेडकर ने उसे सुरक्षित रखा था। ये अम्बेडकर गुरुजी एक बार बम्बई में दामोदर सभागृह के पास स्थित अम्बेडकर के कार्यालय में उनसे मिलने के लिए गए थे। तब महान् पंडित और ख्यातकीर्त उस शिष्य ने गद्‌गद् होकर उन्हें नम्रता से प्रणाम किया। इतना ही नहीं, उन्हें पोशाक देकर उनका यथोचित सम्मान भी किया।

अंग्रेजी की दूसरी-तीसरी कक्षा तक भीम का अध्ययन साधारण ही था। अब भी वह आवारगी में ही रत रहता था। बागवानी करने की उसे बड़ी लगन लग गयी थीं। जो पैसा उसे मिलता था, वह पौधे खरीदने में व्यय हो जाता था। अध्ययन से उसका मन दूर होने का और एक घरेलू कारण भी था। एक दिन त्यौहार के समय भीमाबाई के जेवर उसकी सौतन ने पहने थे। यह देखकर भीमाबाई की याद आने से मीरांबाई रोने लगी। बच्चे भी रोने लगे। यह घटना देखकर रामजी ने क्रोधित होकर ऐसे शब्द बोल दिये जिससे भीम के दिल पर गहरी चोट लगी। उस क्षण से भीम ने यह सोच लिया कि हम अपने पिताजी पर निर्भर न रहकर अपना अलग से जीवन व्यतीत करेंगे। दूसरे के गौ हांकना, खेत में काम करना जैसे मामूली काम वह करने लगा। एक बार तो उसने सातारा स्थानक पर कुली का काम किया। वह सुनकर उसकी बुआ का दिल बहुत दु:खी हुआ। दु:खातिशय के कारण उसने उसे सजा नहीं दी। स्वतंत्र रूप से जीवन व्यतीत करने की उस मेमने की लहर भीम के दिल में बीच-बीच में मचल जाती थी। भीम को ऐसा लगता था कि सातारा के अन्य बच्चे जैसे बम्बई जाकर मिल में नौकरी करते हैं; उस तरह वह भी बम्बई जाकर मिल में नौकरी करे, आत्मनिर्भर बने। लेकिन यह संकल्प कृति में कैसे उतरेगा? गाड़ी के किराए के लिए पैसा कहां से लाया जाय? ऐसा सवाल उसके सामने खड़ा रहा। उसे एक तरकीब सूझी। बुआ की कमर में बंधे हुए पैसे का बटुआ चुराकर अपना संकल्प पूरा करने का उसका इरादा था। उस समय छोटा भीम अपनी बुआ की गोद में सोता था। बुआ की दाईं और बाईं और कौन किस दिन सोए, यह भी उन भाइयों में तय किया जाता था। जागकर, ध्यान रखकर एक बार भीम ने बुआ का वह पैसे का बटुआ चुरा लिया। लेकिन खोलकर देखा तो उसमें दो पैसे ही दिखाई पड़े। उसे बहुत अफसोस हुआ, पछतावा भी हुआ। उसने सोचा कि ऐसी चालाकी कर पलायन करने की अपेक्षा मेहनत से अध्ययन कर हम अपनी उन्नति करें। खुद के पैरों खड़े रहें। अपनी उन्नति साध्य करना ही श्रेयस्कर[6] है। इस घटना से भीम के जीवन में पूरी तरह से परिवर्तन हुआ। उसके मन में अविवेक की जो छाया थी, दूर हो गयी। उसने अपनी आवारगी की आदत छोड़ देने का उस समय ही फैसला किया। उस दिन से भीम के अध्ययन में मेहनत और लगन की वृद्धि हुई। कक्षा में अध्यापकों को भीम की परिवर्तित मनोवृत्ति और नवतेज का अनुभव हुआ। पहले जो अध्यापक भीम की शिक्षा के लिए व्यर्थ व्यय न करें-ऐसी निराशा से उसके पिताजी को भड़काते थे, वे ही अध्यापक अब भीम

के पिताजी से आग्रह करने लगे कि, 'सूबेदार कुछ भी करो, कष्ट उठाओ, लेकिन इस बच्चे की शिक्षा पूरी करो।'

'विद्येनेव मनुष्य आले श्रेष्ठत्व या जगामाजी' वचन पर रामजी की अटल श्रद्धा थी। उनकी यह धारणा थी कि इससे बड़प्पन बढ़ता है और मन तेजस्वी होता है। सूबेदार की यह महत्वाकांक्षा थी कि बच्चे संस्कृत सीखें, बुद्धिमान हों, पंडित के रूप में मशहूर हों। उन्होंने तय किया कि आनंदराव संस्कृत सीखे; किन्तु सातारा के उस माध्यमिक स्कूल में संस्कृत के अध्यापक ने जताया कि, ''मैं महार के बच्चों को संस्कृत नहीं पढ़ाऊंगा।' संस्कृत का मतलब है वेद पठन की कुंजी। शूद्रों और अतिशूद्रों के लिए वेदाध्ययन करना बड़ा अपराध था। यह अपराध करने वालों के कानों में सीसे का तप्तरस डालकर उसे मार डालना अथवा उसकी जबान काट देना; धर्मग्रंथप्रणीत सजा थी। उस समय 'प्रामाण्य बुद्धर्वेदषु' यानी वेद को प्रमाणभूत मानने वाला हिन्दू कहलाता था। लोकमान्य तिलक ने हिन्दू की इस प्रकार परिभाषा की थी। तथापि वह राष्ट्र-नेता यह बोल नहीं सका कि वेद पठन का अधिकार तमाम हिन्दू जाति को है। इसी हालत में निष्फल शब्द कंठस्थ करने वाले उस अंधपरंपराभिमानी शास्त्रीजी की मनोवृत्ति को दोष देना उचित नहीं। आखिर आनंदराव ने मजबूरन पर्सिवन भाषा ले ली। भीम भी यह जान चुका था कि उसके साथ भी वही होगा। सातारा माध्यमिक स्कूल में चौथी कक्षा में प्रवेश करने पर भीम के सामने वह सवाल खड़ा हुआ। वही संकट खड़ा हुआ। संस्कृत अध्यापकों में विद्यमान धर्म-मार्तंड जागृत हुआ। उन्होंने हिन्दू भीम को संस्कृत से वंचित किया। यह कहा जाता है कि ऐसे धर्मशिरोमणि यदि विदेशी आक्रमण का इतनी निष्ठुरता से मुकाबला करते, तो खुद ही मातृभूमि में वे दस्यु बनकर गांव जैसे डरपोक नहीं हो जाते; यह जो कहा जाता है, अनुचित नहीं। अगले साल जब भीम बम्बई गया तब भी उसे वैसा ही कटु अनुभव प्राप्त हुआ। उसके पूर्व ख्यातकीर्त मुकुंदराव जयकर और संस्कृत भाषा की कुछ समय तक ऐसी ही विरहदशा एक शास्त्री जी कर चुके थे।

जब भीम के अध्ययन में बहुत प्रगति हुई थी। हावर्ड की अंग्रेजी किताबों और तर्खडकर भाषांतर पाठशाला की सहायता से भीम के पिताजी ने उसके अंग्रेजी विषय की अच्छी तैयारी करा ली थी। वे किताबें भीम ने कंठस्थ की थी। पर्यायवाची शब्द का उचित प्रयोग करने का पर्याप्त ज्ञान उसके पिताजी ने उसे दिया था। 'मेरे अंग्रेजी वक्तृत्व और ग्रंथलेखन का श्रेय मेरे पिताजी को है,' यह बाबासाहेब अम्बेडकर कृतज्ञता से कहते थे। इसका मूल इतिहास ऐसा था। बच्चों को गणित विषय अच्छी तरह समझाने के लिए उन्होंने एक छोटी नोट-बुक में गोखले के अंकगणित के सभी उदाहरण हल करके लिख दिये थे।

संस्कृत भाषा का अध्ययन बाद में बाबासाहेब अम्बेडकर ने स्वयं मेहनत से किया। उस भाषा में प्रवीण होने की उनकी बड़ी इच्छा थी। संस्कृत भाषा पर उनका असीम प्रेम था। उन्हें संस्कृत वाङ्मय के सामने पर्सियन भाषा एकदम फीकी लगती थी। संस्कृत[7] भाषा में काव्यमीमांसा और अलंकारशास्त्र के ग्रथ हैं, नाटक हैं, रामायण, महाभारत जैसे महाकाव्य हैं, दर्शनशास्त्र है, तर्कशास्त्र है, गणितशास्त्र है। आधुनिक शिक्षा की दृष्टि से देखा जाए तो संस्कृत वाङ्मय में सब कुछ है। ऐसी स्थिति पर्सियन भाषा की नहीं थी। 'मुझे संस्कृत भाषा के प्रति बड़ा नाज होने से वह मुझे अच्छी तरह से अवगत हो; इस बारे में मेरे दिल में बड़ी छटपटाहट है। वह सुदिन जब उदित होगा, तब होगा'-ये उद्‌गार अनेक बार उनके मुंह से निकलते थे।

सूबेदार की सातारा की नौकरी का समय पूरा हुआ। उन्होंने अपना परिवार बम्बई ला दिया। लोअर परेल की ड़बक चाल में वे रहने लगे। भीम पहले कुछ दिन मराठा माध्यमिक स्कूल में जाने लगा। वह सूबेदार को अपने जीवन की एकमात्र आशा की किरण लगता था। वह उनकी आशा का आश्रय और अभिमान का तारा था। भीम को परीक्षा में प्राप्त साधारण सफलता से उनके मन को संतोष नहीं होता था। रात-दिन उन्हें उसके उत्कर्ष की छटपटाहट लगी रहती थी। उस छटपटाहट का अर्थ भीम बिल्कुल नहीं समझता था। भीम कहता था, 'मैं हर साल परीक्षा में बिना किसी दिक्कत के उत्तीर्ण होता हूं, तो मेरे पीछे अध्ययन का तकाजा पिताजी क्यों लगाते हैं?'

उस सब छटपटाहट का असर भीम के जीवन पर अप्रत्यक्ष रूप से पड़ता था। उसके मन में पाठ्यक्रम के बाहर की किताबें पढ़ने की इच्छा पैदा हुई। किताबों के प्रति उसके मन में दिलचस्पी बढ़ने लगी। उसके लिए वह जिद करने लगा। महत्वपूर्ण ग्रंथ देखने पर उसे ऐसा लगता था कि वह अपने संग्रह में हो। अध्ययन की ओर ध्यान न देकर बेटा अतिरिक्त

'विद्येनेव मनुष्य आले श्रेष्ठत्व या जगामाजी' वचन पर रामजी की अटल श्रद्धा थी। उनकी यह धारणा थी कि इससे बड़प्पन बढ़ता है और मन तेजस्वी होता है। सूबेदार की यह महत्वाकांक्षा थी कि बच्चे संस्कृत सीखें, बुद्धिमान हों, पंडित के रूप में मशहूर हों।

किताबें पढ़े यह बात रामजी को बिल्कुल पसंद नहीं थी। तथापि बच्चे के हठ करने पर जेब में पैसा हो या न हो, बगल में मुंडासा रखकर वे किताब लाने के लिए निकल पड़ते थे। वे सीधे कांतेकर के यहां ब्याही अपनी बेटी के पास जाते थे। उससे उधर पैसे लेते थे। अगर उसके पास पैसे न हों, तो वे उसे दिये गए जेवरों में से एक जेवर उधार ले आते थे। वह जेवर एक परिचित मारवाड़ी के यहां गिरवी रखते थे। पैसे प्राप्त होते ही बेटे के लिए आवश्यक किताब खरीदकर आते थे। मासिक सेवानिवृत्ति वेतन हाथ में आते ही जेवर छुड़ाकर लाना और उसे अपनी बेटी को वापस करना-उनकी परिपाटी थी। ''ऐसा वत्सल पिता बहुत थोड़े बच्चों को मिलता होगा, ऐसा मेरा मन मुझे यकीन दिलाता है। मेरे अल्हड़ स्वभाव से मुझे उस समय उनकी वत्सलता का मूल्य मालूम नहीं पड़ा।'' अपने आगे के जीवन में बाबासाहेब यह याद करके गद्‌गद् होते थे। पिताजी की वह भव्य, उदार, देवता समान मूर्ति आंखों के सामने आते ही वे सिसक कर क्यों रोते थे? यह इससे अच्छी तरह से समझ में आता है।

पिताजी द्वारा लाया ग्रंथ पढ़ते-पढ़ते सिरहाने रखकर भीम सो जाता था। मानो भीम की ऐसी आदत ही बन गयी थी। उसकी चोटी के तर-बतर लगे हुए तेल उस पुस्तक को लगकर उस अच्छी पुस्तक की प्रायः बुरी हालत हो जाया करती थी।

पिताजी द्वारा लाया ग्रंथ पढ़ते-पढ़ते सिरहाने रखकर भीम सो जाता था। मानो भीम की ऐसी आदत ही बन गयी थी। उसकी चोटी के तर-बतर लगे हुए तेल उस पुस्तक को लगकर उस अच्छी पुस्तक की प्रायः बुरी हालत हो जाया करती थी। किताबों का संग्रह करने की इच्छा से किसी किताब में अमुक जगह कोई एक महत्वपूर्ण बात है-यह बात कहीं पर न लिखने पर भी, तुरन्त भीम उसे याद कर सकता था। भूतपूर्व और विद्यमान राजनीतिज्ञ विद्वान व्यक्ति और विद्वान राजनीतिज्ञ के जीवन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उनके नेतृत्व और कीर्ति की नींव छात्र-जीवन में ही किए गए अपरिमित वाचन, प्रगाढ़ मनन, और ऐतिहासिक दृष्टिकोण पर अधिष्ठित होती है। रानाड़े, तिलक, सावरकर ये श्रेष्ठ उदाहरण महाराष्ट्र को मालूम हैं। किन्तु उनमें थोड़ा फर्क है। इन तीन महापुरुषों की सामाजिक परिस्थिति और परंपरा तथा भीम की परिस्थिति और परंपरा में ठोस अंतर है। विद्या के सागर और परम्परा में पैर रखकर ही उपरिल्लिखित तीन महापुरुष अवतीर्ण हुए, जो जन्म से कनिष्ठतम स्तर प्राप्त हुए भीम द्वारा शिक्षा प्राप्त करना भयंकर पाप करने जैसा था। ऐसी इच्छा स्वप्न में भी करना संभव नहीं था।

कुछ दिनों में भीम एल्फिन्स्टन माध्यमिक स्कूल में जाने लगा। उस सरकारी स्कूल में भीम द्वारा अपना अपमान न होने के बारे में सोचना स्वाभाविक था। लेकिन यहां भी उसका भ्रमभंग हुआ। स्कूल बाहरी विश्व की छोटी प्रतिमा होती है। बच्चे अपने मां-बाप की छोटी प्रतिमाएं ही हैं। उस स्कूल के बच्चों ने भी जाने-अनजाने भीम को अपमान के दाग दिये। अध्यापक के कहने पर एक बार भीम गणित की किताब के उदाहरण हल करने के लिए श्याम-पट की ओर बढ़ने लगा, इतने में कक्षा के बच्चों ने बहुत शोर मचाया। वे सब श्याम-पट की ओर दौड़ने लगे। वह शोर किस लिए था? श्याम-पट की आड़ में रखे उनके नाश्ते के डिब्बे भीम के स्पर्श से, अशौच होंगे इस भय से उन्हें निकालकर बाहर फेंक देने के लिए वे बच्चे गए थे। उन डिब्बों की वह आवाज बाहर के विश्व के छुआछूत के पागलपन की प्रतिध्वनि थी। यह आवाज और वह शोर भीम के कानों में हमेशा गूंजता रहा होगा, इसमें क्या आश्चर्य? अध्यापकों में से कोई उसे कहता था, 'अरे तू महार है। तुझे पढ़ाई करके क्या करना है? तू स्कूल छोड़कर चला जायेगा तो अच्छा।' तेजोभंग करने वाले वे शब्द हमेशा सुनते-सुनते भीम का क्रोध बेकाबू हो जाता था। एक बार झट से खड़ा होकर अपनी जोरदार आवाज में उसने उस अध्यापक से कहा, 'महोदय, आप अपना काम करें, व्यर्थ की पूछताछ करने के लिए आपसे किसने कहा है?'[8]

भीम के अध्ययन के लिए अलग कमरा नहीं था। बच्चों के लिए घर में अध्यापक रखना सूबेदार के लिए सम्भव नहीं था। ड़बक चाल में स्थित उनका धुआंसा कमरा घरेलू चीजें और भांड़ा-बर्तनों से भरा हुआ था। उसके एक कोने में परछत्ती पर जलाऊ लकड़ी का ढेर था। दूसरे कोने में चूल्हा था। विश्राम, सोना, खाना, अध्ययन करना सब के लिए वही एक कमरा था। उस भीड़ में भी रामजी ने एक तरकीब से बच्चों के लिए अध्ययन की सुविधा कर रखी थी। भीम रात में जल्द ही गुदड़ी में सो जाता था। उसके सिरहाने दीवार को टेककर एक जांता रखा हुआ था। पैरों की तरफ बकरी जोर से श्वासोच्छ्वास करती रहती थी। रात के दो बजे तक स्वयम् जागकर रामजी अपने बेटे को अध्ययन के लिए जगाते थे। बच्चा अध्ययन के लिए बैठता तब वे सो जाते थे। तेल के मंद-मंद प्रकाशित दिये के पास करवट बदलते, लेटते-बैठते अध्ययन कर भीम सुबह पांच बजे फिर सो जाता था। सुबह उठता था। स्नान करके स्कूल जाता था। स्कूल के

नजदीक काम पर जाने वाला एक मज़दूर भीम का खाने का डिब्बा लेकर जाता था। दोपहर भीम स्कूल में ही खाना खाता था। भीम का इसी उम्र में मज़दूरों के जीवन से परिचय हो गया। वह बीच-बीच में छुट्टी के दिन रिश्तेदारों के खाने के डिब्बे लेकर मिल में जाता था। इस समय भीम की शरारतें और नटखटपन कम होने के बावजूद उसे क्रिकेट का बहुत शौक लग गया था। क्रिकेट के मैच होते थे। उस समय भीम के दल की पराजय होने पर भीम के दोस्त आख़िर दूसरे दल के साथ मुद्दा छोड़कर गुद्दा धारण करते थे। झगड़ा शुरू होने पर दोस्त लड़ते थे और भीम की रक्षा करते थे–ऐसा चलता था।

उसी बीच रामजी सूबेदार ने एक फैसला किया। उन्होंने आनंद को नौकरी में लगा दिया। अब उन सब ने भीम की शिक्षा पर ध्यान केंद्रित कर, उसे यथासंभव शिक्षा दिलाने का निर्णय लिया। उपर्युक्त प्रतिकूल परिस्थिति के साथ लड़ते-झगड़ते हुए भीम ने अपने अध्ययन में कोई रुकावट नहीं आने दी। वह हर साल परीक्षा में उत्तीर्ण होता था। पिताजी की उत्तेजना और कुछ उदार मतवादी लोगों की सहानुभूति से अपना अध्ययन अच्छी तरह कर भीम ने 1907 में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। उसके पिताजी आनंद से फूले न समाए। बच्चे ने सफलता की एक सीढ़ी पार की यह देखकर उन्हें बहुत संतोष हुआ। भीमराव ने 750 में से 282 अंक प्राप्त किए। पाठयेतर ग्रंथपठन में लीन रहने वाले और आंदोलनों में व्यस्त रहने वाले छात्र प्राय: परीक्षा में द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण होते हैं। किताबी कीड़ों के रूप में गिनती किए गए बच्चों की अपेक्षा उन्हें परीक्षा में अधिक अंक प्राप्त करना प्राय: असम्भव होता है।

महार का कोई लड़का मैट्रिक उत्तीर्ण हो-यह उस समय एक अभूतपूर्व घटना ही मानी जाती थी। इस उपलक्ष्य में एक समारोह आयोजित किया गया। उस समारोह का अध्यक्ष पद महाराष्ट्र के विख्यात क्रियाशील सुधारक सीताराम केशव बोले को दिया गया। उस सभा में बम्बई के एक और विख्यात विचारक, प्रसिद्ध अध्यापक, मशहूर ग्रंथकार तथा निष्ठावान समाज सुधारक गुरुवर कृष्णाजी अर्जुन केलुसकर भी उपस्थित थे। केलुसकर चर्नी रोड के उद्यान में संध्या के समय किताबों का पठन करते रहते थे। एक दिन नज़दीक के बैंच पर उन्हें एक पैनी बुद्धि वाला लड़का दिखाई पड़ा। वह लड़का भीमराव था। कौतूहलवश उन्होंने भीमराव से जान-पहचान कर ली और उसे प्रोत्साहित किया। उन्हें भीमराव से लगाव हो गया। सहज ही भीमराव के गौरव में उन्होंने दो शब्द कहे और उस समय अपना खुद का लिखा हुआ मराठी बुद्ध चरित्र उन्होंने भीमराव को उपहार के रूप में दिया। सभा समाप्त होने पर गुरुवर केलूसकर ने रामजीपंत से भीमराव के भावी शिक्षा-प्रबंध संबंधी पूछताछ की। उस समय उस स्वाभिमानी आदमी ने कहा, 'मेरी परिस्थिति कठिन है, यह सच है, फिर भी मैंने भीम को उच्च शिक्षा देने का संकल्प किया है।'

महार का कोई लड़का मैट्रिक उत्तीर्ण हो-यह उस समय एक अभूतपूर्व घटना ही मानी जाती थी। इस उपलक्ष्य में एक समारोह आयोजित किया गया। उस समारोह का अध्यक्ष पद महाराष्ट्र के विख्यात क्रियाशील सुधारक सीताराम केशव बोले को दिया गया। उस सभा में बम्बई के एक और विख्यात विचारक, प्रसिद्ध अध्यापक, मशहूर ग्रंथकार तथा निष्ठावान समाज सुधारक गुरुवर कृष्णाजी अर्जुन केलुसकर भी उपस्थित थे।

भीमराव के मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण होने के थोड़े ही दिनों में उसकी शादी करने का विचार तय हुआ। उस समय लड़के-लड़कियों के विवाह प्राय: छात्र जीवन में ही होते थे। उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध में जितने भी मशहूर नेता महाराष्ट्र में हुए उन सब के विवाह अल्पायु में ही हुए थे। उस रूढ़ि के अनुसार सूबेदार ने भीमराव का विवाह किया। पिताजी की इच्छा मानकर भीमराव विवाह करने के लिए तैयार हो गए। इस विवाह के तय होने से पहले भीमराव के एक-दो सगाई-संबंध रामजी सूबेदार ने तोड़ देने की वजह से उन्हें अपनी जात-पंचायत में पांच रूपये जुर्माना देना पड़ा था। विवाह स्थल बम्बई के भायखले का बाजार था। वहां के खुले छप्पर के एक कोने में घराती इकट्ठा हुए। दूसरे कोने में बराती इकट्ठा हुए। छप्पर के नीचे नाली से गंदा पानी बह रहा था। चबूतरे का इस्तेमाल बैंच के रूप में किया गया। बाजार के पूरे स्थान का उपयोग विवाह-स्थल के रूप में किया गया। विवाह-समारोह आनंद और उत्साह के साथ सम्पन्न हुआ। सुबह बाजार में मछुरनियों के आगमन से पहले बराती घर लौट गए। विवाह के समय भीमराव की आयु सत्रह वर्ष की थी। लड़की की आयु नौ वर्ष की थी। लड़की का ससुराल का नाम रमाबाई रखा गया। लड़की उम्र में छोटी लेकिन स्वभाव से शांत और सुस्वभावी थी। वह गरीब लेकिन सदाचारी घराने की थी। वह अपने पिताजी की कनिष्ठ लड़की थी। उसके पिताजी का

नाम भिकू धुत्रे था। दाभोल के समीप स्थित वनंद गांव का वह निवासी था। वह दाभोल बंदरगाह में कुली का काम करता था। लड़की के बचपन में ही उसके मां-बाप चल बसे थे। उसका और उसके भाई-बहनों का पालन-पोषण उनकी चाची और मामा ने किया था। उसके एक भाई का नाम शंकर धुत्रे था। वे मुद्रणालय में नौकरी करते थे। धुत्रे को वनकर नाम से भी पुकारते थे।

इस समय महाराष्ट्र में अस्पृश्यों के उद्धार का आंदोलन आगे बढ़ रहा था। अस्पृश्य समाज के शिवराम जानबा कांबले महाराष्ट्र के अस्पृश्य समाज में जागृति पैदा कर रहे थे। 'सोमबंशीय मित्र' नामक एक मासिक-पत्रिका वे पुणे से प्रकाशित किया करते थे। भारत की अस्पृश्यों की प्रथम परिषद् बुलाने का श्रेय इस कर्तृत्ववान नेता को है। भारतीय अस्पृश्यों को अपने पूर्वजों के धर्म में रहने देकर उन्हें ज्ञान दान कर उनकी ऐहिक उन्नति की जाए—इस तरह का निवेदन भारत सरकार को उन्होंने तुरन्त ही प्रस्तुत किया।

उस समय के दूसरे अस्पृश्योद्धार नेता कर्मवीर विट्ठल रामजी शिन्दे थे। उन्होंने विलायत जाकर समाज शास्त्र और सभी धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन किया था। उन्होंने वहां के दलितोद्धार विषयक कार्य की पूरी जानकारी प्राप्त की थी। भारत लौटने पर उन्होंने भारत के विभिन्न समाज जीवन का निरीक्षण करने के लिए समूचे भारत का दौरा किया। आगे उन्होंने सर नारायण चंदावरकर की सहायता से ''डिप्रेस्ड क्लास मिशन ऑफ इंडिया' नामक संस्था स्थापित की। अस्पृश्योद्धार का यह प्रथम ही संगठित प्रयास था। लेकिन कर्मवीर के दिल पर उदार मतवादी प्रणाली का काफी प्रभाव होने से, सामाजिक संघर्ष दूर रखकर, उन्हें अस्पृश्यता निवारण का कार्य करना था। नामदार गोपाल कृष्ण गोखले के 'सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया' संस्था ने भी अस्पृश्योद्धार-कार्य में बड़ी सहानुभूति दिखाई। 'मैं अस्पृश्यता नहीं मानूंगा', ऐसी शर्त उस संस्था के प्रतिज्ञा-पत्र में सदस्य के लिए रखी गई थी।

भीमराव की महाविद्यालयी शिक्षा के समय की सामाजिक परिस्थिति का यह चित्र है। भीमराव बम्बई के एल्फिन्स्टन महाविद्यालय में शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। अस्पृश्य आदमी के लिए यह एक नया अनुभव, नया जीवन और एक असंभव-सा मौका था, ऐसा कहा जाए तो ठीक ही होगा। बीमारी की वजह से भीमराव का एक साल बरबाद हुआ। भीमराव की इन्टर आर्टस् की परीक्षा उत्तीर्ण होने तक रामजी सूबेदार ने लड़के की शिक्षा का बोझ बड़ी मुश्किल से संभाला। शिक्षा का यह व्यय वे नहीं संभाल सकते हैं—यह देखकर गुरुवर केलुसकर ने सर नारायण चंदावरकर की मध्यस्थता से बड़ौदा नरेश से उनके बम्बई आवास में भेंट की। अस्पृश्यों को प्रोत्साहनार्थ सहायता देने की जो घोषणा बम्बई नगर भवन की सभा में बड़ौदा नरेश ने की थी, उसकी याद दिलाकर गुरुवर केलुसकर ने भीमराव को उनके सम्मुख खड़ा किया। 'बोले तैसा चाले'—उक्ति के महाराज एक चलते-फिरते प्रतीक ही थे। महाराज ने जो प्रश्न पूछे उनके उत्तर भीमराव ने संतोषजनक दिये। अपनी सरकार की माहवार पच्चीस रूपए की छात्रवृत्ति उन्हें देना स्वीकार किया। इस संदर्भ में शिवराम जानबा कांबले ने भी उनके साथ चर्चा की थी, ऐसा एक जगह कांबले ने लिख रखा है। साथ ही बुद्ध-चरित ग्रंथ भीमराव को उपहार में देकर केलुसकर ने भीमराव को समाज में फैली हुई ऊंच-नीचता के खिलाफ जागृत होने का अनजाने में आवाहन किया। उनकी आवश्यक मनोदशा तैयार की। उन्होंने भीमराव के ज्ञान संपादन के पथ पर अपनी सहानुभूति का प्रकाश फैला दिया। खुद के बुद्धि वैभव में वृद्धि करने का उन्हें एक अमूल्य मौका प्रदान किया। गुरुवर केलुसकर के जीवन की यह एक बड़ी संस्मरणीय विशेष घटना थी। यह कहा जाना कि, ''हर अच्छा काम एक यज्ञ है,'' सही होता है।

बुद्ध-चरित ग्रंथ भीमराव को उपहार में देकर केलुसकर ने भीमराव को समाज में फैली हुई ऊंच-नीचता के खिलाफ जागृत होने का अनजाने में आवाहन किया। उनकी आवश्यक मनोदशा तैयार की। उन्होंने भीमराव के ज्ञान संपादन के पथ पर अपनी सहानुभूति का प्रकाश फैला दिया। खुद के बुद्धि वैभव में वृद्धि करने का उन्हें एक अमूल्य मौका प्रदान किया। गुरुवर केलुसकर के जीवन की यह एक बड़ी संस्मरणीय विशेष घटना थी। यह कहा जाना कि, ''हर अच्छा काम एक यज्ञ है,'' सही होता है।

भीमराव के महाविद्यालय में प्राचार्य कॉवर्नटन, प्राध्यापक मूलर, प्रा. एण्डर्सन जैसे ख्यातकीर्त अध्यापक थे। लेकिन उनके अध्यापन की पद्धति का असर भीमराव के मन पर नहीं पड़ सका। प्राध्यापक मूलर का तो भीमराव के प्रति प्रगाढ़ प्रेम था। वे भीमराव को अपनी

कमीजे देते थे। किताबें भी देते थे। तथापि भीमराव के हृदय में वे कोई नयी चेतना का संचार नहीं कर सके। जब भीमराव महाविद्यालय में पढ़ते थे तब वहां भी उन्हें पीने के लिए पानी नहीं मिल सकता था; इस इर्द-गिर्द के वातावरण से वे दु:खी होते थे। दलितों की दीनावस्था देखकर और उनकी करुणाजनक चीत्कार से उनका मन मर्माहत हो जाता था। 'घायल की गति घायल जाने' संतवचन कितना यथार्थ है!

यद्यपि भीमराव ने परीक्षा में सफलता पाने की दृष्टि से अध्ययन शुरू किया था, फिर भी पाठयेतर पठन ही उनके जीवन का सच्चा आनंद था, ब्रह्मानंद था। उस विद्यालय के जीवन में योग्य मार्गदर्शन न मिलने पर भी उनका पठन एक विशिष्ट ध्येय से प्रेरित होकर चल रहा था। भावी जीवन में संघर्ष के लिए बुद्धि को, मन को समृद्ध और सामर्थ्यशाली बनाने वाले जो भी साधन थे, उन्हें प्राप्त करना मानो उन्होंने प्रारंभ किया था। उसी समय रामजी सूबेदार ने पोयबावड़ी के इम्प्रूवमेंट चाल नंबर एक में अपना परिवार तबदील किया। जब सरकार ने ये चालें बनाना तय किया, तब रामजी सूबेदार ने उस समय के बम्बई के राज्यपाल से भेंट ली थी, और अस्पृश्य वर्ग के लिए भी वे चालें खुली रखी जाये। इस तरह का निवेदन उनके पास प्रस्तुत किया था। उसी बात का यह फल था कि अस्पृश्यों को स्पृश्यों के साथ उस चाल में रहने के लिए जगहें मिल सकी।

चाल क्रमांक 1 की दूसरी मंज़िल पर आमने-सामने स्थित पचास-इक्यावन क्रमांक, के कमरे में अम्बेडकर निवास करते थे। कमरा क्रमांक 50 में भीमराव अध्ययन करते थे। उठने-बैठने के लिए वही कमरा था। कमरा क्रमांक इक्यावन में रसोई घर था। कमरे में भीमराव के अध्ययन करते समय पिताजी बाहर पहरा करते थे। परीक्षा नजदीक आते ही भीमराव ने बड़े उत्साह के साथ अध्ययन किया और सन् 1912 में बी.ए. परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। लेकिन संयोग से भीमराव अम्बेडकर द्वारा आगे स्थापित किए गए सिद्धार्थ महाविद्यालय के प्रथम प्राचार्य पद विभूषित करने वाले अ.बा. गजेन्द्रगड़कर इसी परीक्षा में अव्वल आए थे।

भारत के राजनीतिक असंतोष ने उस समय चरम उग्र रूप धारण किया था। विचार स्वातंत्रय, सभा स्वातंत्रय का गला घोंटने का काम दिन-ब-दिन बढ़ता ही जा रहा था। इस संबंध में किए गए अनुरोध, निषेध-निवेदन–सब देश द्रोह की भनक है, ऐसा ब्रिटिश सरकार मानती थी। सरकार के मतानुसार उस आंदोलन के सभी नेता देशद्रोही थे। उस समय सरकार ने लोकमान्य तिलक को मंडाले और सावरकर बन्धुओं को अंडमान भेज दिया था। महाराष्ट्र के तेजस्वी संपादकों को कारागृह में बंद कर दिया था। महाराष्ट्र के क्रांतिकारियों में से कुछ युवक फांसी पर चढ़ाए गए थे, कुछ लोग कारागृह में सड़ रहे थे। इस जुल्मो सितम की वजह से सारे देश में असंतोष की प्रचंड झंझायुक्त लहरें एक के बाद एक फैलती जा रही थी। इस शोरगुल से शिवाजी का महाराष्ट्र डांवांडोल हो गया। इसलिए तिलक के पुनरागमन तक महाराष्ट्र में भीषण अशांति फैल गयी।

भारत की इन ज्वालाग्राही घटनाओं की प्रतिध्वनि भीमराव के देशाभिमानी मन पर कितनी गहरी पड़ी थी उसकी एक झांकी उनके 'प्रांतिक कोष-व्यवस्था का विकास' ('दि इवोल्यूशन ऑफ प्रोविन्शल फायनान्स इन ब्रिटिश इंडिया') नामक सुप्रसिद्ध ग्रंथ में देखने को मिलती है। सत्ता कभी-कभी खुद ही आत्महत्या कर लेती है, यह तत्व बताते हुए भीमराव अम्बेडकर कहते हैं, 'अपराध न हो इसलिए प्रतिरोधक कानून की अपराध और दंड संहिता में जो व्यवस्था की गयी है, उस पर संतोष न करते हुए कार्यकारिणी समिति ने पृथ्वी पर किसी भी देश में नहीं हुए ऐसे कुछ काले कानून बनाकर भारतीय कानून संहिता पर कालिख[9] पोत दी। नौकरशाही, सनातनी जुल्मशाही प्रवृत्ति की ओर गैरजिम्मेदार रहते हुए सभी लगान, शिक्षा और उद्योग-व्यवसाय पर पैसा व्यय न करते हुए नौकरशाह पर फिजूल खर्च करती है।'

'अपराध न हो इसलिए प्रतिरोधक कानून की अपराध और दंड संहिता में जो व्यवस्था की गयी है, उस पर संतोष न करते हुए कार्यकारिणी समिति ने पृथ्वी पर किसी भी देश में नहीं हुए ऐसे कुछ काले कानून बनाकर भारतीय कानून संहिता पर कालिख[9] पोत दी। नौकरशाही, सनातनी जुल्मशाही प्रवृत्ति की ओर गैरजिम्मेदार रहते हुए सभी लगान, शिक्षा और उद्योग-व्यवसाय पर पैसा व्यय न करते हुए नौकरशाह पर फिजूल खर्च करती है।'

सन् 1910 का मुद्रण संबंधी कानून विचार-स्वतंत्रता और सभा-स्वतंत्रता का गला घोंटने वाला था ऐसा उन्होंने उसमें लिख दिया है। सच्चे देशभक्त को शोभायमान होने वाले ये साहसी विचार थे।

मोरले-मिंटो सुधार संबंधी उनके विचार माननीय है। प्रांतिक सरकार के विधान मंडल को स्वतंत्र तो दिखाना, उन

पर नियंत्रण भी करना और मंत्रिमंडल के अस्तित्व का लोकप्रतिनिधियों के मतों पर निर्भर न रखना–यही सही खूबी थी। राज्यपालों के कार्यकारी मंडल भारतीयों की उन्नति की दृष्टि से कुछ कार्य नहीं कर सके, क्योंकि उनके ध्येय और रुख की दिशा इस देश का सुधार करने की नहीं थी। उनके ध्येय और रुख भारतीय समाज की जरूरतों, दु:खों और आकांक्षाओं से प्रेरित नहीं हुए थे। इसलिए उन कार्यकारी मंडलों ने शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति नहीं की। स्वदेशी का समर्थन नहीं किया। इतना ही नहीं, ज्यों-ज्यों राष्ट्रीय भावना से युक्त दिखाई देगा,[10] उसकी ओर उंगलियां चटकाने के अतिरिक्त वे कुछ नहीं कर सके, क्योंकि यह प्रगति उनके हित के लिए बाधक थी। यह वे मंडल जान चुके थे, ऐसा भीमराव अम्बेडकर का मुंहतोड़ अभिप्राय था।

स्नातक होने के बाद बड़ौदा रियासत में भीमराव ने पिताजी की इच्छा के खिलाफ नौकरी की। बड़ौदा सरकार की सेना में भीमराव की लेफ्टिनेंट पर नियुक्ति हुई। भीमराव बम्बई में रहे और कुछ भी हो, बड़ौदा न जाए, ऐसी रामजी सूबेदार की इच्छा थी। बड़ौदा का वातावरण बेटे को रास नहीं आएगा, ऐसा उन्हें अपने मन में महसूस हुआ होगा। इसलिए उन्होंने भीम का मन परिवर्तित करने का भरसक प्रयास किया। लेकिन भीमराव अपने हठ पर अड़े रहे। इधर देखा जाए तो ब्रिटिश हिन्दुस्तान के सरकारी सचिवालय भी वरिष्ठ समाज के दकियानूसी सुशिक्षितों से भर गए थे।

तथापि संयोग यह था कि भीमराव को बड़ौदा जाकर आठ-पद्रंह दिन भी नहीं हुए थे कि पिताजी के अस्वस्थ होने का तार भीमराव को अचानक प्राप्त हुआ। भीमराव ने सीधे गाड़ी पकड़ ली। वे रास्ते में सूरत स्थानक पर पिताजी के लिए सूरत की मिठाई लेने के लिए नीचे उतरे। परन्तु उस हड़बड़ी में रेलगाड़ी बम्बई चली गयी। दूसरी रेलगाड़ी मिलने के लिए दूसरा दिन उदित हुआ। भीमराव दोपहर बड़ी देर से बम्बई पहुंचे। घर में आकर देखा तो पिताजी मृत्यु शैय्या पर थे। रिश्तेदार और पड़ौसी उनके बिस्तर के पास चिंतामन होकर बैठे थे। वह दृश्य देखते ही उनके मन में भय का आकस्मिक उद्रेक हो गया। मृत्यु-शैय्या पर पड़े हुए उस धर्मपुरुष के प्राण भीमराव को देखने के लिए अटके हुए थे। वह स्वाभिमानी आदमी बेटे की राह पर आंखें बिछाए हुए था। आंखों में प्राण अटके थे। बेटे के आ जाने की खबर कानों में पड़ते ही उन्होंने आंखे खोली। अपने लाड़ले बेटे की पीठ बड़े प्रेम से थपथपाई। अपने जीवन की आशा की एकमात्र पूंजी को उन्होंने अच्छी तरह से स्नेहसिक्त आंखों से देखा और थोड़े ही क्षणों में उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये। उनके हाथ-पैर ढीले पड़ गए। उनका शरीर ठंडा पड़ने लगा। रामजी की इहलोक यात्रा समाप्त हुई। भीमराव जोर-जोर से रोने लगे। उनके आक्रंदन के सामने अन्य किसी का शोक नहीं सुनाई देता था।

स्नातक होने के बाद बड़ौदा रियासत में भीमराव ने पिताजी की इच्छा के खिलाफ नौकरी की। बड़ौदा सरकार की सेना में भीमराव की लेफ्टिनेंट पर नियुक्ति हुई। भीमराव बम्बई में रहे और कुछ भी हो, बड़ौदा न जाए, ऐसी रामजी सूबेदार की इच्छा थी।

रामजी सकपाल आजीवन उद्यमशील, महत्त्वकांक्षी, स्वाभिमानी जीवन व्यतीत करते रहे। वे उम्र से वृद्ध, स्वभाव से गरीब, लेकिन चरित्र से गुणी थे। वे अपने पीछे अपने बन्धु-बांधवों के लिए, अपने देश के लिए और सम्पूर्ण मानवता के लिए एक ऐसी वसीयत छोड़ गए, जिसकी उन्होंने अपने जीवनपर्यंत कल्पना भी नहीं की होगी।

जीवनकाल में संकट और मोह का मुकाबला करने के लिए आवश्यक सख्ती, मनोनिग्रह और हिम्मत–ये गुण उन्होंने अपने बेटे की रग-रग में अंकित किए थे। बेटे के समकालीनों में शायद दिखाई देने वाली दिव्य धार्मिकता से उसका जीवन तेजोमय करके उस स्वाभिमानी पुरुष ने इस जगत् से अंतिम विदा ली।

संदर्भ

1. अग्रलेख, जनता, 7 जनवरी, 1933
2. सवादकर, का.वि., बाबासाहेबांनी सांगितलेली आठवण
3. -वही-
4. हुदलीकर, प्रा. सत्यबोध, नवयुग डॉ. अम्बेडकर विशेषांक, 13 अप्रैल 1947
5. अम्बेडकरांचे भाषण, जनता, 20 नवम्बर 1937
6. Ambedkar's Speech, the Bombay Sentinel, 20 January 1942
7. हुदलीकर, प्रा. सत्यबोध, नवयुग डॉ. अम्बेडकर विशेषांक, 13 अप्रैल 1947
8. शिवतरकर, सी.ना. जनता 14 अप्रैल 1934
9. '' पृ. 198
10. '' पृ. 196-97

अध्याय 3
विद्या के लिए कड़ी तपस्या

पिताजी की मृत्यु से भीमराव अम्बेडकर का एकमात्र सहारा टूट गया। परिस्थिति यह थी कि पैसे की मदद नहीं, रिश्तेदारों का आधार नहीं। बड़ौदा में नौकरी पर हाजिर होने लायक उनकी मन:स्थिति नहीं थी। उस नौकरी का अनुभव भी कुछ अच्छा नहीं था। अब उनके पास खुद के पैरों खड़े रहने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं था। उनमें ज्ञान प्राप्त करने की असीम इच्छा थी। जगत में कुछ महत्तम कार्य करना, उनकी मूक महत्वाकांक्षा थी। इसलिए उनका मन बेचैन रहता था। परिवार का

पालन-पोषण करना तो जरूरी था और आगे शिक्षा जारी रखने के लिए पास कौड़ी भी नहीं थी। पिताजी की मृत्यु कर्जदार के रूप में हुई थी। इस तरह जीवन संघर्ष की तीव्र खींच-तान से कैसे मार्ग निकाला जाए, इसी चिंता में उन्होंने बड़ौदा नरेश से बम्बई में भेंट की। उस समय बड़ौदा सरकार ने उच्च शिक्षा के लिए चार छात्रों को छात्रवृत्ति देकर अमरीका भेजने का विचार किया था। महाराज ने भीम को छात्रवृत्ति के लिए आवेदन-पत्र भेजने के लिए कहा। उन चार छात्रों में उन्होंने भीमराव अम्बेडकर को चुन लिया। तद्नुसार भीमराव बड़ौदा गए। वहां उपशिक्षा मंत्री के सम्मुख 4 जून 1913 को उन्होंने इकरारनामे पर हस्ताक्षर किए। उस इकरार के अनुसार यह तय किया गया कि वे मनोनीत विषयों का अध्ययन अमरीका में करें और बाद में दस साल बड़ौदा रियासत की सेवा करें।

भारतीयों को विदेश में अध्ययन के लिए जाने का मौका मिलना उस समय एक अनहोनी-सी बात मानी जाती थी। सहज ही एक अस्पृश्य युवक के लिए तो यह एक स्वर्ण मौका ही था। भारत के घृणित अस्पृश्य द्वारा अब्राहम लिंकन और बूकर टी. वॉशिंगटन की मातृभूमि में प्रवेश कर वहां का उदात्त, स्फूर्तिदायी और अद्यतन जीवन व्यतीत कर अपनी सामर्थ्य बढ़ाना एक अभूतपूर्व घटना थी। जुलाई के तीसरे सप्ताह में 1913 को अम्बेडकर न्यूयॉर्क पहुंच गए। प्रथमत: वे विश्वविद्यालय के आवास में रहने लगे। लेकिन वहां के अध-पके अन्न और गोमांस के व्यंजनों से उनके मन में घृणा पैदा हुई और इसी कारण वे एक ऐसे स्थान पर रहने लगे, जहां कुछ भारतीय विद्यार्थी रहते थे। तद्नंतर वे नवल भथेना नामक पारसी विद्यार्थी के साथ लिविंगस्टन हॉल शयन मंदिर में रहने लगे। न्यूयॉर्क का जीवन अम्बेडकर के लिए एक अभूतपूर्व अनुभव था। वहां के विद्यार्थियों के साथ अम्बेडकर बराबरी के साथ वार्तालाप करते, भोजन करते और घूमते थे। सभी जगह समता का वातावरण था। वही जीवन उन्हें एक साक्षात्कार लगता था। उस नये जगत ने उनके मन का क्षितिज विशाल किया। उनकी अंतरात्मा एक नये तेज से स्फुरित होने लगी। अमरीका से अपने पिताजी के मित्र को लिखे एक खत में उन्होंने पददलितों की दीनता पर एक अकसीर उपाय सुझाया।

भारतीयों को विदेश में अध्ययन के लिए जाने का मौका मिलना उस समय एक अनहोनी-सी बात मानी जाती थी। सहज ही एक अस्पृश्य युवक के लिए तो यह एक स्वर्ण मौका ही था। भारत के घृणित अस्पृश्य द्वारा अब्राहम लिंकन और बूकर टी. वॉशिंगटन की मातृभूमि में प्रवेश कर वहां का उदात्त, स्फूर्तिदायी और अद्यतन जीवन व्यतीत कर अपनी साम्मर्थ बढ़ाना एक अभूतपूर्व घटना थी।

पददलित समाज में शिक्षा का प्रसार करना ही वह उपाय था। उन्होंने अपना यह मत व्यक्त किया कि कार्यकर्ताओं को शिक्षा-प्रसार के लिए परिश्रम करना चाहिए। आंग्ल नाटककार शेक्सपियर के नाटक के वचन व्यक्ति के जीवन में आए सुअवसर की तरंग का उचित उपयोग करने पर वह व्यक्ति वैभव प्राप्त करता है[1]-को उद्धृत करते हुए उन्होंने अपनी दृढ़ धारणा उस आदमी को सूचित की कि शिक्षा के लिए प्राप्त मौके का उपयोग हर एक करे। उसी पत्र में अम्बेडकर आगे कहते है कि, ''यह गलत है कि मां-बाप बच्चों को जन्म देते हैं; कर्म नहीं देते। मां-बाप बच्चों के जीवन को उचित मोड़ दे सकते हैं, यह बात अपने मन पर अंकित कर यदि हम लोग अपने लड़कों की शिक्षा के साथ ही लड़कियों की शिक्षा के लिए भी प्रयास करें, तो हमारे समाज की उन्नति तीव्र गति से होगी।'' इस गहरे विचार में ही अम्बेडकर के भावी 'स्वाभिमान, आत्मनिर्भरता और आत्मोद्धार' आंदोलन के बीज दृष्टिगोचर होते हैं ईश्वर पर भरोसा रखकर चुप बैठने वाले दलितों की दुर्बल प्रवृत्ति के खिलाफ आगे उन्होंने जो संघर्ष किया उसका मूलमंत्र इसमें दिखाई पड़ता है। इस पत्र में प्रयुक्त सुवचनों से अम्बेडकर में स्थित सावधानी और अवसर का सदुपयोग कर लेने की समयज्ञता-इन सद्गुणों की झलक भी दिखाई देती है।

ऐसे उदात्त विचारों और मनोराज्य में अम्बेडकर निमग्न हुए थे। इन विचारों को कृति में लाने के लिए अपनी सामर्थ्य बढ़ानी चाहिए, इसकी पूरी समझ उन्हें थी। इसलिए अपने अंगभूत गुणों का स्वयम् ही उत्कर्ष करना और उसके लिए अथक परिश्रम करना आवश्यक है, यह भी उन्होंने जाना था। प्रथमत: कुछ दिन उनके मन में थोड़ी दुविधा पैदा हुई, तथापि थोड़ी ही अवधि में उन्होंने अपने दायित्व को आंका और अपनी सारी शक्ति इकट्ठा करके अध्ययन करना तय किया।

सुखोपभोग में रत होने में साधारणतया प्रत्येक विश्वविद्यालयी युवक विद्यार्थी का रुझान होता है। किन्तु ध्येयनिष्ठ अम्बेडकर का मन उस तरह के जीवन के लिए अनुकूल नहीं था। और पैसा तो उनके पास था ही नहीं। सिनेमा देखने के लिए जाना, नयनाभिराम सौंदर्य स्थल देखना, क्रीड़ोद्यान

में रत होना, ऐसे विचार उनके मन को छूते भी नहीं थे। उन्हें जोर से भूख लगती थी, लेकिन एक कप कॉफी, दो केक, एक तश्तरी मांस और मछली पर उन्हें अपनी भूख शमित करनी पड़ती थी। उस भोजन का मूल्य एक डालर दस सेंट था। छात्रवृत्ति की आमदनी से उन्हें अपनी पत्नी के घरेलू खर्च के लिए कुछ भेजना पड़ता था। इस परिस्थिति को जिन सहपाठियों ने देखा था वे आगे बड़े अभिमान के साथ कहते थे कि, 'प्राप्त अवसर का पूरा लाभ उठाने के लिए अम्बेडकर ने जीवन का हर एक क्षण स्वर्ण-कण मानकर अध्ययन के लिए ही व्यतीत किया। धन का हर एक हिस्सा उन्होंने कार्य के लिए ही खर्च किया।' अम्बेडकर का ध्येय अमरीका की बड़ी से बड़ी विश्वविद्यालयी उपाधि हासिल करने के तक ही सीमित न था बल्कि अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीति, नीतिशास्त्र और मानवशास्त्र आदि विषयों में प्रवीणता प्राप्त करने की उनकी प्रबल महत्वाकांक्षा थी।

अम्बेडकर के मन पर वहां के एक प्राध्यापक के व्यक्तित्व का काफी प्रभाव था। उसका नाम था एडविन आर.ए. सेलिग्मन। वह प्राध्यापक महोदय अमरीका में रहने वाले लाला लाजपतराय के मित्र थे। लाला लाजपतराय की सेलिग्मन के साथ जान-पहचान ब्रिटेन के समाजवादी विचारक सिडने वेब की वजह से हुई थी। जैसे बतख पानी से दूर नहीं रहता वैसे अम्बेडकर सेलिग्मन से दूर नहीं रहते थे। वे उनकी सम्मति से हर एक कक्षा में ज्ञानकण बुनने के लिए दौड़ते थे। वे प्राध्यापक महोदय हाथ में ली हुई किताब के कोने मोड़ते-मोड़ते कुछ ऐसी आकर्षक शैली से विद्यार्थियों को ज्ञान प्रदान करते थे कि उनके ममतामय स्वभाव की, प्रगाढ़ विचारों की और प्रवाही भाषा शैली की खुशबू उनके शिष्यों के जीवन पर स्थायी रूप से अंकित हो जाती थी। अनुसंधान की कौन सी पद्धति अपनाई जाए, ऐसा अम्बेडकर ने उन्हें एक बार पूछा था। तब उस गुरुवर ने अम्बेडकर को ऐसा हितोपदेश किया कि, 'तुम अपना काम लगन से करते जाओ, तुम्हारी खुद की पद्धति सहज ही बन जायेगी।

इस तरह अम्बेडकर के ज्ञानयज्ञ का प्रारंभ अमरीका में हुआ। हर रोज 18 घण्टे अनुपात में कुछ महीने अध्ययन चलता रहा। आखिर दो वर्षों की निरंतर तपस्या के बाद सफलता ने उनके गले में माला

अम्बेडकर के मन पर वहां के एक प्राध्यापक के व्यक्तित्व का काफी प्रभाव था। उसका नाम था एडविन आर.ए. सेलिग्मन। वह प्राध्यापक महोदय अमरीका में रहने वाले लाला लाजपतराय के मित्र थे। लाला लाजपतराय की सेलिग्मन के साथ जान-पहचान ब्रिटेन के समाजवादी विचारक सिडने वेब की वजह से हुई थी।

पहनाई। प्राचीन भारत का व्यापार (एन्शंट इंडियन कॉमर्स) विषय पर उन्होंने सन् 1915 में प्रबंध लिखकर एम.ए. उपाधि प्राप्त की। 1916 मई में डॉ. गोल्ड़नवेज़र की सम्मेलन (सेमिनार) में 'भारत की जातियां, शासन प्रणाली, उत्पत्ति और विकास' (कास्ट्स इन इंडिया, देअर मेकॅनिज्म, जेनिसिस एण्ड डेवलममेंट) विषय पर उन्होंने एक निबन्ध पढ़ा। 'स्वजाति-विवाह जाति-व्यवस्था का प्राणसूत्र है। जाति-व्यवस्था में ही संभव होती है। एक वचन में असंभव होती है। मनु के पूर्व जाति-व्यवस्था अस्तित्व में थी। उस काल में प्रचलित नियमों को मनु ने सिर्फ संहिताबद्ध किया, इतना ही![2] ये विचार अम्बेडकर ने उस निबंध में व्यक्त किए हैं। उनके मतानुसार मनु एक उद्धत और साहसी पुरुष था।

इस तरह सफलता की पहली सीढ़ी पार करने के बाद दूसरी सीढ़ी पार करने के लिए अम्बेडकर को अधिक समय नहीं लगा। 'भारत के राष्ट्रीय मुनाफे का बंटवारा एक ऐतिहासिक और विवेचनात्मक अध्ययन' (नेशल डिविडेन्ड ऑफ इंडिया : ए हिस्टॉरिक एण्ड ॲनलिटिकल स्टडी) नामक प्रबन्ध से संबंधित उनका अध्ययन और विचार विमर्श उपर्युक्त प्रबन्ध के साथ ही चल रहा था। बहुत दिनों की मेहनत के बाद वह प्रबंध उन्होंने पूरा किया। जून 1916 में कोलंबिया विश्वविद्यालय ने उस प्रबंध को स्वीकार किया। शैक्षिक क्षेत्र में अम्बेडकर की यह सफलता इतनी देदीप्यमान थी कि उस समय कोलंबिया विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने प्रीतिभोज देकर उनका हार्दिक अभिनंदन किया। उनके लिए लिंकन का संकल्प और जीवनोद्देश्य तथा बुकर टी. वॉशिंगटन की उद्यमशीलता अपने में समेकित करने वाले अम्बेडकर का अभिनंदन करना, एक बड़ा सुयोग ही था।

आठ साल बाद लंदन के पी.एस. किंग एण्ड सन्स प्रकाशन संस्था ने यह प्रबन्ध विस्तृत रूप में 'ब्रिटिश भारत में प्रान्तीय वित्त का उदय' (दि इवोल्यूशन ऑफ प्रोविन्शल फायनेंस इन ब्रिटिश इंडिया) नाम से प्रकाशित किया। अम्बेडकर द्वारा इस ग्रंथ की छपी हुई प्रतियां नियम के अनुसार कोलंबिया विश्वविद्यालय को प्रस्तुत करते ही उस विश्वविद्यालय ने विधि

वत् उन्हें 'डाक्टर ऑफ फिलासफी' की अत्युच्च उपाधि प्रदान की। उपर्युक्त प्रबंध अम्बेडकर ने श्रीमान सयाजीराव महाराज को कृतज्ञताज्ञापन के रूप में अर्पित किया। अम्बेडकर को अर्थशास्त्र का पहला पाठ सिखाने वाले गुरुवर सेलिग्मन ने उस ग्रंथ की प्रस्तावना लिखी है। अम्बेडकर द्वारा लिया हुआ यह विषय विश्व के विचारकों की चर्चा का एक महत्वूपर्ण विषय है, ऐसा कहकर सेलिग्मन प्रस्तावना में कहते हैं, 'इस विषय का इतना गहरा तथा सर्वांगीण अध्ययन अन्य किसी ने किया हो, तो मुझे मालूम नहीं।' इससे इस ग्रंथ की मौलिकता और महत्व का पता चल सकता है।

भारत के प्रान्तिक और केन्द्रीय विधि मंडल के सदस्यों की दृष्टि से यह ग्रंथ अतिशय उपयुक्त सिद्ध हआ। भारतीय मुद्रासंबंधी राजकीय आयोग के सम्मुख डॉ. अम्बेडकर को गवाही देने के लिए बुलाया गया था। उस समय कमीशन के सदस्यों के हाथ में अपना ग्रंथ देखकर अम्बेडकर को प्रसन्नता हुई होगी, इसमें संदेह नहीं। इस ग्रंथ के दस से बारह तक के अध्याय चित्ताकर्षक और परिणामकारी बने हुए हैं। ग्रंथ में देशप्रेमी अम्बेडकर की आत्मा प्रबंधकार अम्बेडकर के साथ समरस हो गयी है। ब्रिटिश नौकरशाही, साम्राज्यशाही और भारत की सामाजिक प्रतिगामी शक्ति पर अम्बेडकर ने उन अध्यायों में कठोर कोड़े लगाये हैं। ब्रिटिशों ने भले ही भारत में शांति स्थापित की हो, फिर भी यह मानना अनुचित है कि लोग शांति और सुव्यवस्था से संतुष्ट रहें। उन्होंने उस ग्रंथ में यह कहा है। अपनी मातृभूमि के उद्योग धंधों और वहां के धनपतियों के हित की दृष्टि से ही ब्रिटिश राज्यकर्ता अपना रुख रखते थे और राजकाज चलाते थे। प्रत्येक देश में सामाजिक अन्याय के नीचे दबाया जा रहा दलित समाज होता ही है। किन्तु ऐसा होने पर कोई भी देश राजनैतिक अधिकार भी उसी कारण नकार नहीं सकता। इस तरह के निर्भीक और प्रखर विचार उस ग्रथ में अम्बेडकर ने स्पष्ट रूप से व्यक्त किए हैं।

ग्रंथ खरीदने की अम्बेडकर की भूख कम होने के बदले बढ़ती ही जा रही थी। समय मिलने पर वे पुराने ग्रंथों की दुकानों में भटकते रहते थे। पेट काटकर ग्रंथ खरीदने की धुन से लगभग दो हजार पुराने ग्रंथों का संग्रह उनके पास हो गया। वह ज्ञान भंडार भारत लाने के लिए उन्होंने अपने एक मित्र के हवाले किया। भारत में आने तक उनमें से अनेक ग्रंथ गायब होकर जो थोड़े बच गए, उनके हाथ में लग गए।

अमरीका में यात्रा के दौरान अम्बेडकर के मन पर दो घटनाओं का विशेष असर पड़ा होगा। पहली घटना थी कि अमरीका के संविधान में गुलामी खत्म करने के लिए किया गया 14वां संशोधन। दूसरी घटना थी अमरीका में स्थित नीग्रों के उद्धारकर्ता बुकर टी. वॉशिगटन की मृत्यु। अमरीका में अपना अध्ययन पूरा होते ही अम्बेडकर ने जुलाई, 1916 में वहां से विदा ली।

वे दिन प्रथम विश्वयुद्ध के थे। अभी तक युद्ध में जर्मनी की विजय हो रही थी; ब्रिटेन की यूरोप की समरभूमि पर हुई दुर्गति, स्वराज्य प्राप्ति के लिए चले भारतीय आंदोलन द्वारा दिये गए धक्के और भारतीय क्रांतिकारियों के विद्रोह से लगे हुए आघातों से ब्रिटिश सरकार हैरान हुई थी। सब जगह खुफिया पुलिसों की निगरानी थी। युद्ध के समय विदेश में भी भारतीय क्रांतिकारियों की हलचल चल रही थी। उस समय देशभक्त लाला लाजपतराय अमरीका में थे। उन्होंने विद्यार्थी अम्बेडकर को राजनीति में खींचने का प्रयास किया। अम्बेडकर ने वह मोह विवेक से टाल दिया। उन्होंने निश्चयपूर्वक लेकिन विनयपूर्वक लालाजी से कहा, 'अन्य सब बातों का विचार छोड़ दिया जाए तो भी बड़ौदा नरेश ने मेरी बहुत सहायता की है। उन्हें दिया हुआ वचन न तोड़ते हुए अपना अध्ययन पूरा करना मेरा पहला फर्ज है।'

अमरीका में यात्रा के दौरान अम्बेडकर के मन पर दो घटनाओं का विशेष असर पड़ा होगा। पहली घटना थी कि अमरीका के संविधान में गुलामी खत्म करने के लिए किया गया 14वां संशोधन। दूसरी घटना थी अमरीका में स्थित नीग्रों के उद्धारकर्ता बुकर टी. वॉशिगटन की मृत्यु। अमरीका में अपना अध्ययन पूरा होते ही अम्बेडकर ने जुलाई, 1916 में वहां से विदा ली।

लंदन में कानून और अर्थशास्त्र का अध्ययन करने की बड़ौदा नरेश की सम्मति अम्बेडकर ने प्राप्त कर ली थी। लंदन पहुंचते ही ब्रिटिश गुप्तचरों ने सिर से पांव तक अम्बेडकर की तलाशी ली। ब्रिटिश गुप्तचरों की दृष्टि से यह बात कुछ महत्वपूर्ण नहीं थी कि अम्बेडकर अमरीका में भारतीय क्रांतिकारियों के साथ रहकर लंदन आ गए। अम्बेडकर ने कानून का अध्ययन करने के लिए 'ग्रेज इन' में अक्तूबर में अपना दाखिला लिया। उसी समय उन्होंने 'लंदन स्कूल ऑफ इकॉनॉमिक्स एण्ड पोलिटिकल साइंस' संस्था में भी अर्थशास्त्र का अध्ययन करने

के लिए प्रवेश प्राप्त किया। अर्थशास्त्र विषय की उनकी प्रगति देखकर वहां के प्राध्यापक ने उन्हें एक परीक्षा में न बैठने की सहूलियत दी और डी.एस.सी. की परीक्षा की सिद्धता करने के लिए अनुज्ञा दी। लेकिन अध्ययन प्रारंभ करते ही उनकी ओर दुर्भाग्य की दृष्टि मुड़ गयी। इसी बीच बड़ौदा के दीवान के पद पर मनुभाई मेहता की नियुक्ति हुई थी। वे 10 फरवरी 1927 तक उसी पद पर आसीन थे। बड़ौदा के इस नये दीवान ने अम्बेडकर को सूचित किया कि, 'छात्रवृत्ति की निर्धारित कालावधि समाप्त हो गई है, इसलिए आप अब भारत लौट आएं।' यह आदेश पत्र पढ़कर डॉ. अम्बेडकर को भारी धक्का पहुंचा। तथापि कुछ भी हो, अध्ययन के लिए लंदन वापस लौटने का मन में संकल्प कर उन्होंने अक्तूबर 1917 से चार वर्षों के अंदर पुन:श्च अध्ययन शुरू करने की अनुमति लंदन विश्वविद्यालय से प्राप्त कर ली। तुरन्त वे भारत लौटने के लिए तैयार हुए। वे मार्सेलिस में कैसर-इ-हिन्द जहाज में बैठे। उस समय जर्मनी द्वारा की गई बम वर्षा और पनडुब्बी की विनाशकारी शक्ति के कारण सभी जगह हा-हाकार मच जाने से सागरी पर्यटन अत्यंत धोखे में आ गया था। ऐसी स्थिति में भूमध्य सागर में एक जहाज समुद्री-सुरंग से डुबा दिए जाने की खबर पढ़ते ही बम्बई में अम्बेडकर परिवार आतंकित हो गया। लंदन तक अनेकों ने अनेक तार भेज दिये। अम्बेडकर जिस जहाज से यात्रा कर रहे थे वह सुरक्षित है, यह मालूम होने पर अम्बेडकर के प्रियजनों को शांति मिली। जो जहाज डूबा उसमें अम्बेडकर का सिर्फ समान था। लेकिन अम्बेडकर की जायदाद में उनके ग्रंथों के अतिरिक्त और क्या हो सकता था?

21 अगस्त, 1917 को डॉ. अम्बेडकर बम्बई पहुंचे। 20 अगस्त को तत्कालीन भारतमंत्री मांटेग्यू ने ब्रिटिश संसद में एक महत्वपूर्ण घोषणा की। उस घोषणा के अनुसार ब्रिटिश साम्राज्य के एक प्रमुख भाग के रूप में भारत में क्रमश: उत्तरदायी शासनपद्धति स्थापित कर उस देश की स्वायत्त शासन-संस्थाओं का धीरे-धीरे विकास करना और राजकाज के हर एक विभाग में भारतीय लोगों को अधिकाधिक अधिकार देना तय हुआ।

डॉ. अम्बेडकर के आगमन से उनके चेहेतों और रिश्तेदारों को आनंद हुआ। अम्बेडकर ने शैक्षिक जगत में जो स्पृहणीय सफलता प्राप्त की, उसके उपलक्ष्य में उनका अभिनंदन उस समय के इलाका शहर-दंडाधिकारी राव बहादुर चिमणलाल सेटलवाड़ की अध्यक्षता में करने का फैसला संभाजी वाघमारे और अन्य लोगों ने किया। उस समारोह के लिए अम्बेडकर की अनुमति लेने के लिए जो अस्पृश्य नेता गए थे, उनको उन्होंने विनम्रता से बताया, 'मुझे सम्मान नहीं चाहिए। मैंने आप लोगों पर एहसान करने के लिए पढ़ाई नहीं की। मुझे परमात्मा की कृपा से मौका मिला और इसलिए मैंने पढ़ाई की। मेरी भांति अन्य लोगों को मौका मिल जाए तो वे भी मेरी भांति ही परीक्षा में उत्तीर्ण होंगे। इसलिए आपने मेरे सम्मानपत्र के लिए जो चंदा इकट्ठा किया होगा, उसका अपनी अस्पृश्य जाति के होनहार छात्रों को छात्रवृत्ति देने के लिए उपयोग कीजिए।' संकोच और विश्व के महान विद्यालयों के एक से एक बढ़कर श्रेष्ठ प्रकांड पंडित देखने की वजह से उन्हें ऐसा लगा होगा कि उनको मिली सफलता किसी प्रशंसा के काबिल हो, इतनी बड़ी नहीं है। इसलिए सचमुच ही डॉ. अम्बेडकर उस समारोह को उपस्थित नहीं रहे, तथापि सभा समाप्त होने पर उनके निवास स्थान पर जाकर कुछ कार्यकर्ताओं ने उनका गुणगान किया ही।

बड़ौदा सरकार के साथ किए गए इकरार-पत्र के अनुसार नौकरी करने के लिए अम्बेडकर ने बड़ौदा रवाना होने का निश्चय किया। परन्तु बड़ौदा का टिकट लेने के लिए भी उनके पास पैसे नहीं थे। दु:ख में सुख के अनुसार उनके सागर में नष्ट हुए सामान के मुआवजे के रूप में थॉमस कुक कंपनी ने अम्बेडकर को थोड़े पैसे दे दिये। वे पैसे उस समय उनके काम आ गए। उनमें से आधे पैसे अपनी पत्नी को घर खर्च चलाने के लिए दे दिये, आधे पैसे उन्होंने खुद के खर्च के लिए रखे और वे बड़ौदा के लिए तत्पर हुए।

20 अगस्त, 1917 की घोषणा के अनुसार राजकीय रियासतों के मन की कनसुई लेने के लिए नवम्बर में उस समय के भारत मंत्री मांटेग्यू स्वयं भारत आए। विभिन्न दलों ने अपनी शिकायतें उनके सम्मुख नवम्बर और दिसम्बर 1917 के बीच रखीं। अस्पृश्यों को विभिन्न संस्थाओं ने अपनी भूमिका विशद की। सर नारायण चंदावरकर ने 'डिप्रेस्ड क्लासेस मिशन ऑफ इंडिया' संस्था की ओर से मांटेग्यू से भेंट की। मद्रास की 'पंचम् कवी अभिवर्ती अभिमान संघ' अस्पृश्यों की संस्था को निवेदन किया कि अधिक राजनीतिक अधिकार के लिए लड़ते रहे। ब्राह्मणों की गुलामी से सरकार हमें पहले मुक्त करें, क्योंकि सांप, मेंढकों के पालक नहीं हो सकते। मद्रास आदि द्रविड़ जनसंघ संस्था ने अपने 7 लाख आदिवासियों की ओर से एक प्रार्थना पत्रक प्रस्तुत किया। उनको कुष्ठ रोगी के समान मानने वाले स्पृश्य हिन्दुओं का उस पत्रक में उन्होंने विरोध किया और ऐसी सर्वसम्मत मांग की कि उन्हें उन्नति करने का मौका दिया जाए। मांटेग्यू से मिलने का सवाल अम्बेडकर के बारे में उद्‌भूत होना संभव नहीं था; क्योंकि अम्बेडकर रूपी तारे का उदय राजनीतिक आसमान में अभी होने वाला था। ■

(पॉपुलर प्रकाशन द्वारा प्रकाशित धनंजय कीर की लिखी पुस्तक डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर जीवन चरित से साभार)

(शेष अगले अंक में)

स्नेहा भारती की कविताएं

1. मोहब्बत मिशन से

बाबासाहेब के लाडलों,
रमाबाई के दुलारों,
कर लो कुछ तैयारी,
काम बहुत है भारी,
छोड़ दे अब मां का आंचल,
बहुत वक्त है गुजारा।
ठण्डी छांव में
मिशन के लिए तपने की
कर ले अब तैयारी
जुल्फ के काले सायों से
जरा निकलकर देख ले
जमाने में मोहब्बत और भी बनती है।
मोहब्बत ही करनी है तो
बाबासाहेब के मिशन से कर ले
कमजोर और पिछड़ों का
एक मिशन बनाया था
जिसकी बागडोर सौंप गए थे
वो हमारे हाथ में।
कल मिशन ने हमें चलाया था
आज मिशन को हमारी जरूरत है
फिर आंच आई है हमारे अधिकारों पर
बलिदान भी अपना करना पड़े तो
संकोच ना आने पाए।■

2. कुछ काम मिशन का कर ले

चल उठ खड़ा हो, ऐ नौजवां,
कुछ काम मिशन का कर ले।
हसीना के संग डेट पर जाने में,
यूं वक्त न गवां।
डिस्को व होटल के खाने में,
अतिव्यय को ना बढ़ा।
परिश्रम का ये मधुजल
मिशन को बढ़ाने में लगा
बहुमूल्य इस अर्थ और समय को
यूं व्यर्थ ना गवां
कुछ काम मिशन का कर ले।
संघर्ष करने की अब है तुम्हारी बारी
तोड़ मानसिक गुलामी को
बाबासाहेब की शिक्षा-दीक्षा से
बुद्धि के द्वार खोल
जाग और जगा
एक हो जाए सारे जन
कुछ काम मिशन का कर ले।
ये वक्त गुजर गया तो
मिशन पिछड़ जाएगा
और मिशन पिछड़ गया तो
सब हाथ से निकल जाएगा।
बिना थके बिना रुके
कुछ काम मिशन का कर ले ■

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान
Dr. Ambedkar Foundation
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार
Ministry of Social Justice & Empowerment, Government of India

15, जनपथ, नई दिल्ली-110001,
फोन नं. 011-23320588, 23320589, 23320571, 23320576,
फैक्स: 011-23320582
Website: www.ambedkarfoundation.nic.in

सामाजिक न्याय संदेश

समतावादी विचार का संवाहक

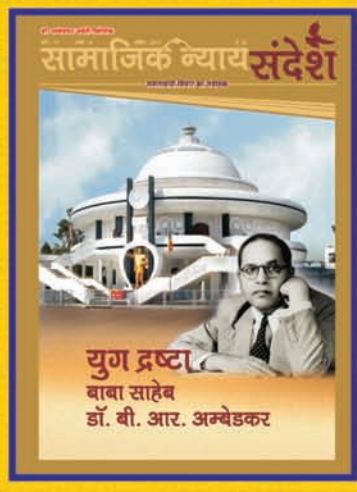

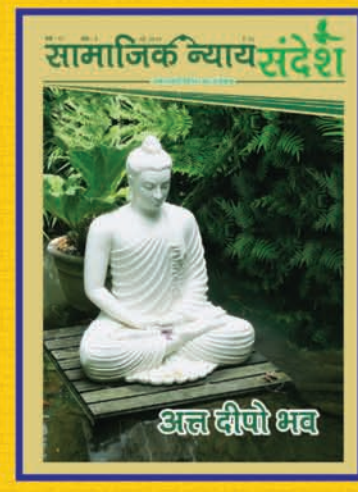

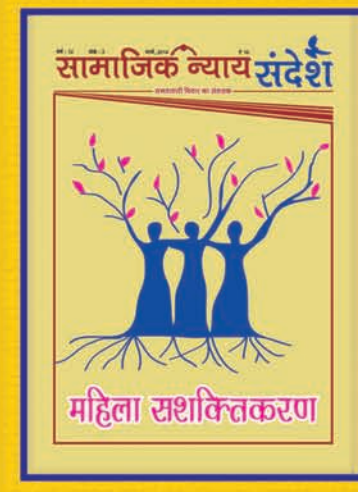

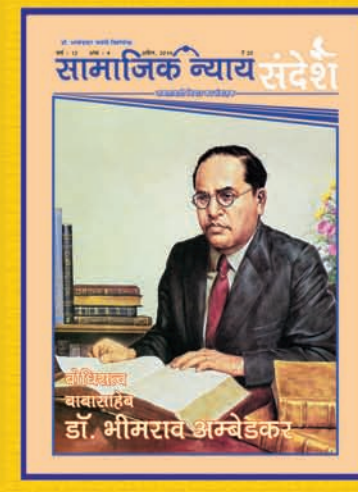

स्वयं पढ़े एवं दूसरों को पढ़ने के लिए प्रेरित करें।

15, जनपथ, नई दिल्ली-110001, फोन नं. 011-23320588, 23320589, 23320571, 23320576, फैक्स: 011-23320582
Website: www.ambedkarfoundation.nic.in

सामाजिक-आर्थिक व सांस्कृतिक सरोकारों की पत्रिका

सामाजिक न्याय संदेश

समतावादी विचार का संवाहक

डॉ. अम्बेडकर फाउन्डेशन द्वारा प्रकाशित सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक सरोकारों की पत्रिका *'सामाजिक न्याय संदेश'* का प्रकाशन पुनः आरम्भ हो गया है। समता, स्वतंत्रता, बन्धुत्व एवं न्याय पर आधारित, सशक्त एवं समृद्ध समाज और राष्ट्र की संकल्पना को साकार करने के संदेश को आम नागरिकों तक पहुँचाने में सामाजिक न्याय संदेश की भूमिका बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। 'सामाजिक न्याय संदेश' देश के नागरिकों में मानवीय संवेदनशीलता, न्यायप्रियता तथा दूसरों के अधिकारों के प्रति सम्मान की भावना जगाने के लिए समर्पित है।

'सामाजिक न्याय संदेश' बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर के विचारों व उनके दर्शन तथा फाउन्डेशन के कार्यक्रमों एवं योजनाओं को आम नागरिकों तक पहुँचाने का काम बखूबी कर रहा है।

सामाजिक न्याय के कारवां को आगे बढ़ाने में इस पत्रिका से जुड़कर आप अपना योगदान दे सकते हैं। आज ही पाठक सदस्य बनिए, अपने मित्रें को भी सदस्य बनाईए, पाठक सदस्यता ग्रहण करने के लिए एक वर्ष के लिए रू. १००/-, दो वर्ष के लिए रू. १८०/-, तीन वर्ष के लिए रू. २५०/-, का डिमांड ड्राफ्ट, अथवा मनीऑर्डर जो **'डॉ. अम्बेडकर फाउन्डेशन'** के नाम देय हो, फाउन्डेशन के पते पर भेजें या फाउन्डेशन के कार्यालय में नकद जमा करें। चेक स्वीकार नहीं किए जाएंगे। पत्रिका को और बेहतर बनाने के लिए आपके अमूल्य सुझाव का भी हमेशा स्वागत रहेगा।

– सम्पादक

सामाजिक न्याय संदेश सदस्यता कूपन

मैं, डॉ. अम्बेडकर फाउन्डेशन द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका 'सामाजिक न्याय संदेश' का ग्राहक बनना चाहता /चाहती हूँ/

शुल्कः वार्षिक सदस्यता शुल्क रू. 100/-, **द्विवार्षिक सदस्यता शुल्क रू.** 180/-, **त्रैवार्षिक सदस्यता शुल्क रू.** 250/-।

(जो लागू नहीं होता, उसे कृपया काट दें)

मनीऑर्डर/ डिमांड ड्राफ्ट नम्बर.....दिनांक.....संलग्न है।

कृपया ध्यान रखें, आपका डिमांड ड्राफ्ट/मनीऑर्डर 'डॉ. अम्बेडकर फाउन्डेशन' के नाम नई दिल्ली में देय हो।

नाम (स्पष्ट अक्षरों में) .....

पता .....

.....पिन .....

फोन/मोबाईल न.....ई.मेल: .....

इस कूपन को काटिए और शुल्क सहित निम्न पते पर भेजिए :

डॉ. अम्बेडकर फाउन्डेशन

15 जनपथ, नई दिल्ली-110 001 फोन न. 011-23320588, 23320589, 23357625

THE CONSTITUTION OF INDIA

WE THE PEOPLE OF INDIA, having solemnly resolved to constitute India into a **SOVEREIGN SOCIALIST SECULAR DEMOCRATIC REPUBLIC** and to secure to all its citizens:

JUSTICE, social, economic and political;

LIBERTY of thought, expression, belief, faith and worship;

EQUALITY of status and of opportunity; and to promote among them all

FRATERNITY assuring the dignity of the individual and the unity and integrity of the Nation;

IN OUR CONSTITUENT ASSEMBLY this twenty-sixth day of November, 1949, do **HEREBY ADOPT, ENACT AND GIVE TO OURSELVES THIS CONSTITUTION.**

RNI No. DELHIN/2002/9036

प्रकाशक व मुद्रक जी.के. द्विवेदी, द्वारा डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान के लिए इण्डिया ऑफसेट प्रेस, ए-1, मायापुरी इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-I, नई दिल्ली-110064 से मुद्रित तथा डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, 15 जनपथ, नई दिल्ली–110001 से प्रकाशित।
सम्पादक : सुधीर हिलसायन